बेचारा सम्पादक

प्रहसनके पात्र

रमारमण—एक सेठ, 'सविता'-के प्रकाशक ।

आदित्यदेव—रमारमणका मित्र ।

देवकुमार—एक ग्रेजुएट, 'सविता'-सम्पादक ।

अविनाश—देवकुमारका सहायक और मित्र ।

विश्वनाथ—(पहले) एक समालोचक (फिर) सम्पादक ।

गणेश } —विश्वनाथके शिष्य ।
रमेश }

प्रथम दृश्य

स्थान—रमारमणकी बैठक ; समय प्रातः ।

(रमारमण और आदित्यदेव बातें करते हैं)

रमा०—आदित्य ! हमको एक सम्पादक चाहिये। जिस प्रकार चातकको स्वातीके बूँदकी, चक्रवाक पक्षीको सूर्यकी, सूर्यको प्रकाश की, चन्द्रको शीतलताकी और बीसवी सदीके लेखकोंको पुरस्कारकी आवश्यकता होती है; वैसे ही मुझे एक सम्पादककी आवश्यकता है ।

आदित्य०--सम्पादक! सेठजी, सम्पादक किसे कहते हैं? क्या सम्पादक नामके किसी नूतन "कैश वाक्स"-का अविष्कार हुआ है? जो न करें—ये अमरीका वाले---

रमा०—(बात काटकर) छिः! इतना भी नहीं जानते! जंगलमें रहते हो क्या? जरूर जंगलमें ही रहते होगे; नहीं तो, आजकल इस देशमें ऐसा कौन मनुष्य-कलंक होगा जिसका परिचय 'सम्पादक' से न हो! जैसे देवलोकमें इन्द्र, पातालमें बलि, जर्मनीमें क़ैसर, ग्रेट-ब्रिटेनमें लायडजार्ज और संसारमें महात्मा गांधी प्रसिद्ध हैं; वैसे ही या कुछ अंशोंमें उससे भी बढ़कर इस देशमें 'सम्पादक' प्रसिद्ध है।

आदित्य०—तब ऐसे क्यों नहीं कहते कि सम्पादक 'रंगूनी चावल' का उपनाम है। बेशक, उसकी प्रसिद्धिको कौन अस्वीकार करेगा? छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब सबको उसकी आवश्यकता पड़ती है। परन्तु आप—आप तो पुराने चावल--तुलसीभोग, श्यामजीरा, पद्मगन्ध इत्यादिके खानेवाले हैं। इस रंगूनी चावलकी आपको क्या आवश्यकता है?

रमा०---जान पड़ता है तुम जन्मभर वही रहोगे बाबा मेरे, सम्पादक जड़ नहीं होता, वह चैतन्य है ; पशु नहीं होता, वह मनुष्य है। हमारी-तुम्हारी तरह उसके भी नेत्र, कान, हाथ, पैर इत्यादि होते हैं। परन्तु, जैसे शरीरमें सिर, भूधरोंमें हिमालय, देवताओंमें शंकर, कलम-बाजोंमें समालोचक श्रेष्ठ होते हैं ; वैसे ही मनुष्योंमें सम्पादकोंका मान है।

आदित्य०---(आश्चर्यसे) ऐसा ! सम्पादक करते क्या हैं ?

रमा०---वे पत्र-पत्रिका रूपी 'पोत'-को साहित्य-सागरमें एक अनुभवी 'कैप्टन'-की तरह चलाते हैं। उसे जलस्थित पर्वत-रूपी अर्थ-कष्टसे रक्षित रखते हैं और समालोचकोंके कोप-क्षोभसे बचाते हैं।

आदित्य०---अच्छा !

रमा०---क़लमका पतवार उनके हाथमें होता है। और प्रकाशक ही उनका दिग्दर्शक-यंत्र (कम्पास) है।

आदित्य०--(कुछ न कहकर आश्चर्यसे मुंह फैला देता है।)

रमा०—वे कल्पवृक्ष हैं ; लेखक उनसे प्रार्थना कर यश माँगते हैं ; धन माँगते हैं ; पत्रकी 'एक प्रति' माँगते हैं। वे जिसपर रुष्ट होते हैं वह उनसे 'मुक्ति' माँगता है।

आदित्य०—अच्छा, एक बात बतलाइये। इतने दिनों तक तो नहीं आज एकाएक आपको सम्पादक की क्या आवश्यकता आ पड़ी है ?

रमा०—मैं एक मासिक-पत्र निकालना चाहता हूँ।

आदित्य०—क्यों ?

रमा०—इस युगमें यही एक ऐसा व्यापार है जिससे मनुष्योंको बिना परिश्रमके ही चारों फल मिल जाते हैं।

आदित्य०—भला ! पत्रका नाम क्या होगा ?

रमा०—'सविता'।

—o—

द्वितीय दृश्य

स्थान—सड़क ; समय —सन्ध्या।

(देवकुमार विचारता चला आता है)

देव०—अब ? अब तो इस आफ़िससे भी कोरा जवाब मिल गया। अब किस धनीके द्वारपर जाकर नौकरी-भिक्षा मांगूं ? यदि यही दशा कुछ दिनोंतक और रही तो फिर हमारा संसार कैसे चलेगा। स्त्री है, लड़के हैं, उनके खाने-पहिननेका प्रबन्ध कैसे होगा ? पैतृक सम्पत्ति तो इस ग्रेजुएटाग्निमें न जाने कबकी स्वाहा हो गई। घरमें चारों ओर चूहे दण्ड पेल रहे हैं। भला पांच-पांच रुपयोंके दो ट्यूशनोंसे क्या होता है ? (कुछ ठहरकर) ओह ! अंग्रेजी आफ़िसके साहब कितने अभिमानी होते हैं। खुद तो चाहे चौथे दर्जेसे अधिककी योग्यता न रखते हों परन्तु जिसे पचास रुपयेका क्लर्क बनावेंगे उसकी योग्यता आचार्य (एम० ए०) से कम होनेपर काम न चल सकेगा ! एम० ए० पासके लिए

पचास रुपये! चौदह वर्ष तक सरस्वतीके द्वारपर धरना देनेका पुरस्कार पचास कागज़ी रुपये! धिक्कार है इस विद्यापर!! परन्तु—परन्तु यह भी क्या सब पाते हैं? कहाँ?

(अविनाशका प्रवेश)

अविनाश०—ओहो! आप हैं? इधर कैसे आ टपके?

देव०—ऐसे ही, कुछ काम था भाई। कहो तुम कहाँ से आ रहे हो? यह हाथमें क्या लिये हो?

अवि०—यह कलका 'आज' है।

देव०—क्या कहा—कलका आज?

अवि०—जी हाँ, कलका 'आज'।

देव०—अविनाश तुम बड़े भारी मसखरे हो। यह 'कलका आज' किस जानवरका नाम है? तुम्हारे हाथमें तो कोई हिन्दी समाचार-पत्र जान पड़ता है!

अवि०—मैं क्या कुछ और कहता हूं? 'आज' भी तो एक समाचार-पत्र है। आपने उसे कभी नहीं देखा है! वह काशीसे प्रकाशित होता है।

देव०---भला ! जान पड़ता है इसका नामकरण स्वयं चतुराननने किया है। इसमें कोई नयी खबर है क्या ?

अवि० है तो, मगर उस खबरसे मेरा जितना लाभ नहीं है, उतना आपका है। देखिए।

देव०—भाई ! घरसे चलते समय चश्मा लेना भूल गया ; इसलिये मुझसे कुछ भी पढ़ा नहीं जायगा। तुम्हीं पढ़कर सुनाओ--इसमें मेरे फ़ायदेका कौन समाचार है ?

अवि० –सुनिए। (पढ़ता है) "आवश्यकता है !"

देव०- यह तो तुम विज्ञापन पढ़ रहे हो।

अवि० –सुनिए जी। (पुनः पढ़ता है) - "आव-श्यकता है !"

"शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले---

हिन्दीके सर्वोत्कृष्ट सचित्र मासिक-पत्र

"सविता"

के लिए एक विद्वान् सम्पादककी।"

देव०---बेशक ! संवाद तो बहुत ही अच्छा जान पड़ता है। अविनाश !

अवि०—पहले सब सुन तो लीजिए—"उस (सम्पादक) के लिए अंग्रेज़ी जानना—नहीं, नहीं अंग्रेज़ीका ग्रेजुएट होना—उतना ही आवश्यक है जितना दालमें नमक, सौन्दर्यमें मादकता, प्रेममें विरह, शासन-में अत्याचार और अल्पविद्यामें अभिमानका होना।"

देव०—वाह! विज्ञापनवाला तो पूरे कालिदास जान पड़ते हैं!

अवि०—(पढ़ता जाता है)—"यदि कोई बृहस्पति-के सदृश विद्वान, शुक्राचार्यकी तरह चतुर, सनकादिककी तरह मायाहीन, चाणक्यकी तरह कूटनीतिज्ञ, भूतलकी तरह सहनशील हो; तो, उसे हमारे पास प्रार्थना-पत्र सबसे पहले भेजना चाहिये।"

देव०—वाह! तब तो—(हर्षकी मुद्रा)

अवि०—(उसी स्वरमें)—"वेतन योग्यतानुसार २०) रु० मासिकसे लेकर ५०) रु० मासिक तक दिया जायगा।

पता—सेठ रमारमण प्रसाद, पुराना चौक, प्रयाग।"

देव०—अविनाश!

अवि०—कहिए ! शुभ समाचार है न ?

देव०—अवश्य भाई ! देखो मैं आज ही इनके यहाँ प्रार्थना-पत्र भेजकर अपने भाग्यकी परीक्षा करूँगा।

अवि०—अच्छी बात है। परन्तु सम्पादकीय गद्दीपर बैठकर अपने बाल-बन्धु अविनाशको न भूल जाइयेगा। मिडिल पास करने पर भी मेरी पूछ कहीं नहीं है ! आह रे भाग्य !!

देव०—मैं तुम्हें कदापि न भूलूंगा। पहले सम्पादक तो हो लेने दो। अच्छा अब चलें ?

अवि०—नमस्कार।

देव०—नमस्कार।

(दो ओरसे दोनोंका प्रस्थान)

तृतीय दृश्य

स्थान—रमारमण की कोठी; समय-तीन बजे दिन।

(हाथमें प्रार्थना-पत्रोंका बण्डल लिये आदित्यदेव खड़ा है तथा रमारमण बैठा है।)

रमा०—तुम भी बैठ जाओ आदित्य ! हाँ, आज प्रार्थना-पत्रोंके आनेकी तिथि समाप्त हो गई। चलो, पढ़ो, आज किसी एकको सम्पादक चुन लिया जाय।

आदित्य०—(बण्डल खोल कर और उसमें-से एक पत्र निकाल कर) देखिये, यह हिन्दी प्रसिद्ध विद्वान कविरत्न-कारुण्ड देवका पत्र है।

रमा०—इन्होंने बी० ए० पास किया है ?

आदित्य०—नहीं। परन्तु हैं बड़े भारी लेखक।

रमा०—जाने दो ! दूसरा पत्र देखो।

आदित्य०—यह महाकवि बड़वानलका प्रार्थना-पत्र देखिये। ओह ! इनकी योग्यताका सिक्का बड़े-बड़े लोगों-

पर जम गया है। विख्यात डा० ग्रियर्सन साहब इनके बड़े भक्त हैं।

रमा०—तब तो इन्होंने एम० ए० अवश्य पास किया होगा।

आदि०—जी नहीं, परन्तु इनकी अंग्रेज़ी की योग्यता कम नहीं है।

रमा०—योग्यता होनेसे क्या होता है; 'डिप्लोमा' तो नहीं है। जैसे पूँछके बिना पशु, नाकके बिना मनुष्य, वस्त्रके बिना स्त्री, सुगन्धके बिना पुष्प, असत्यके बिना राजनीतिज्ञ शोभा नहीं पाते; वैसे ही अंग्रेज़ी 'डिप्लोमा'-के बिना हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादकोंकी भी दुर्दशा होती है। दूसरा पत्र देखो।

आदित्य०—यह न जाने कौन रामचरण प्रसाद, एफ० ए० हैं। इन्हें यह भी नहीं मालूम है कि 'एफ० ए०' लिखने से न लिखना ही अधिक उत्तम होता है।

रमा० यह किसी प्रकार अच्छे हैं। परन्तु दूसरा पढ़ो। इस पत्र को अलग रखना।

आदित्य०—(उसे अलग रखकर) यह देखिये।

यह गोविन्द प्रसाद एम० ए० (आक्सन) अरे...ए...ए...ए...ए—

रमा०—क्या है जी ?

आदित्य०—(अर्ध-स्वगत) OX आक्स ! 'आक्स' माने बैल ! और यह है 'आक्सन !!'—(प्रकट) यह क्या ! सेठजी ! यह 'आक्सन'—एम० ए० पास करके बैल ?—लेकिन बैल कैसे ?

रमा०—तुम बड़े मूर्ख हो । जो बात नहीं जानते उसमें अपनी बुद्धि लगाकर व्यर्थमें क्यों समय नष्ट करते हो ? 'आक्सन' समझनेके लिए कमसे कम 'एण्ट्रेन्स' पास करना चाहिए । यह अंग्रेजी है, भाई मेरे । यह राज-भाषा है । इसकी प्रतिष्ठा इसकी दुरूहताहीके लिए है । 'फ़र्स्ट रीडर' पढ़कर 'आक्स' और 'आक्सन' का भेद समझना असम्भव है । हिन्दीकी 'पहली पोथी' का सिद्धान्त यहां पर न चलेगा ।

आदि०—अच्छा कृपाकर बता दीजिए यह 'आक्सन' क्या है ?

रमा०—उन्होंने विलायत जाकर 'आक्सफ़र्ड युनि-

-वर्सिटी'-से एम० ए० पास किया है। इसीलिये वे अपनेको 'एम० ए० (आक्सन)' लिखते हैं।

आदित्य—समझ गया। अच्छा यह 'आक्सन' महोदय भी सम्पादक होना चाहते हैं। परन्तु इनकी 'एक विनीत प्रार्थना है।' इनका काम १५०) से कममें न चलेगा।

रमा०—सो न हो सकेगा।

आदित्य०—अब दूसरा देखिए—यह पण्डित देवकुमारजी बी० ए० का पत्र है। ५०) रुपये आपके लिए भी कम हैं, परन्तु यदि आप 'एक वर्षमें १००) कर देनेकी प्रतिज्ञा करें,' तो इन्हें आनेमें कोई आपत्ति न होगी।

रमा०- एक सौ!—बहुत है! परन्तु सालभर बाद न? जान पड़ता है उस समय ५०) रु० को ८०) रु० बना देनेसे भी काम चल जायगा। ठीक है। इन्हींको चुनो। भेज दो पत्र। इनका मकान कहाँ पर है?

आदित्य०— इसी शहरमें।

रमा०—यह और भी अच्छी बात है।

—:०:—

चतुर्थ दृश्य

स्थान—'सविता'-सम्पादकका कमरा; समय—दो पहर।

(देवकुमार और अविनाश बैठे हैं)

देव०—छः नियम तो ठीक हैं। अच्छा अब सातवाँ पढ़ो।

अवि०—सातवाँ नियम पुरस्कारके विषयमें है। इसमें तो प्रकाशक महोदयने उदारताकी इति कर दी है। लिखा है—"प्रथम श्रेणीके मौलिक लेखकोंको 'छः आने पन्ना' से 'आठ आने पन्ना' तक, द्वितीय श्रेणीवालोंको 'चार आने' से 'छः आने' तक तथा तृतीय श्रेणीवालोंको 'एक आना' से 'चार आने' तक पुरस्कार दिया जायगा। कविता कठिन विषय है इसीलिए उनका पुरस्कार 'एक आना' छन्द रक्खा गया है।"

देव०—भाई, यह नियम तो घोर अपमान जनक है। एक 'सर्वोत्कृष्ट' पत्रिकाके लेखकोंका यह पुरस्कार! शिव! शिव!!

अवि०—क्या अंग्रेजी पत्रिकाओंके लेखक इससे अधिक पुरस्कार पाते हैं ?

देव०—उनसे अपनी तुलना क्यों करते हो ? पहले 'बंगला'-को ही क्यों नहीं देखते ? उसकी 'सर्वोत्कृष्ट' पत्रिकाओंके लेखकोंको पाँच रुपये पृष्ठसे लेकर बीस रुपये, या इससे भी अधिक, पृष्ठ तक पुरस्कार दिया जाता है।

अवि०—(घोर आश्चर्य की मुद्रा से) हाँ...आँ... आँ...आँ...आँ !

देव०—और अंग्रेजी का पुरस्कार इसका चौगुना-अठगुना या इससे भी अधिक होता है।

अवि०—बापरे बाप ! तब तो मैंने अंग्रेजी न पढ़कर बड़ा भारी पाप किया है। क्यों साहब ! क्या हिन्दीके लेखक इस पुरस्कारको स्वीकार करेंगे ?

देव०—केवल स्वीकार ही नहीं करेंगे बल्कि न मिलने पर माँगेंगे भी—क्योंकि उनके साहित्य में—"अर्ध तजहिं बुध सरबस जाता।" लिखा है। हाँ 'सविता'-का वार्षिक मूल्य क्या होगा ?

अवि०—भूल गये। वह तो पहले ही १०) रु० वार्षिक लिखा है।

देव०—खैर, जाने दो। मैंने लेखकों के पास सहस्रों पत्र भेजे हैं। उन का कुछ फल हुआ या नहीं ?

अवि०—होगा क्यों नहीं ? दर्जनों कविताएं और सैकड़ों लेख आज तक आ चुके हैं। ऐसा कोई भी प्रसिद्ध लेखक या कवि न होगा जिसने "श्रीयुत् सम्पादक-सविता"-की सेवामें लिखनेका सौभाग्य न प्राप्त किया हो।

देव०—तुम उन्हें हमारे पास ले आओ। 'पहले अंक'-का 'मैटर' ठीक कर दूं। देखो, एक लेख मैं भी लिख रहा हूं। अविनाश ! हिन्दी बड़ी ही सरल भाषा है।

अवि०--जी हां। आप किस विषयपर लेख लिख रहे हैं ?

देव०—अभी उसका 'शीर्षक' सुन लो. लेख फिर पढ़ लेना। वह है—"सम्पादक की वक्तव्य।"

अवि०—अरे यह तो अशुद्ध हुआ !

देव०—नहीं ठीक है ? अच्छा लो, मैं उसे "सम्पादक का प्रार्थना" बना देता हूँ ।

(काट कर बनाना चाहता है)

अवि०—ठहरिए, पहले ग़लती तो समझ लीजिए। इस शीर्षकमें व्याकरणकी भूल है ।

देव०—व्याकरण ? हिन्दीमें व्याकरण कहाँ है ? यहाँ तो सब "मन माना घर जाना" है ।

अवि०—"सम्पादककी वक्तव्य" में लिङ्गकी भूल है। वक्तव्य पुल्लिङ्ग है। अस्तु "का वक्तव्य" होना चाहिए ।

देव०—चुप रहो ! हम इस 'लिङ्ग-विवाद'-में नहीं पड़ना चाहता। मैंने बी० ए० पास किया है। भला मुझसे 'लिङ्ग'-की भूल होगी, तिसमें हिन्दी-सी सड़ी भाषामें ! मैंने जो लिखा है वही शुद्ध है। इसी योग्यतापर हमारे सहकारी बने हो ? जाओ ! अपना काम करो !

अवि०—जो आज्ञा।

पञ्चम दृश्य

स्थान—विश्वनाथका घर ; समय-प्रातः ।

(विश्वनाथ और उसके दो विद्यार्थी रमेश, गणेश बातें करते हैं ।)

रमेश—गुरूजी, हिन्दी साहित्यकी जो आजकल बड़ी शीघ्रता से उन्नति हो रही है इसपर आपकी क्या सम्मति है ?

गणेश—मेरी समझसे तो यह हमारे सौभाग्य का विषय है ।

रमेश—तुमसे ही यदि सन्तोष जनक उत्तर मिलनेकी आशा होती तो मैं यह प्रश्न गुरूजीसे क्यों करता ? बीचमें बोले बिना रहा नहीं जाता क्या ?

विश्व०—सुनो रमेश ! हिन्दी जिस गतिसे आज-कल उन्नति कर रही है वह निस्सन्देह आशा-जनक है । परन्तु उसके पीछे एक बड़ा भारी 'परन्तु' लगा है ।

रमेश—कैसा ?

विश्व०—परन्तु इस उन्नतिमें उच्छृङ्खलताका अंश भी पर्याप्तसे अधिक है।

गणेश—कैसे ?

विश्व०—सभी अपने मनकी करते हैं। इस 'सभी'-का अर्थ नये लेखकोंसे है। आजकलके कवि, कविता लिखनेसे पहले पिङ्गल पढ़ना व्यर्थ समझते हैं। उनका कथन है कि पिंगल तो कविको परतंत्र कर डालता है।

रमेश—वाह ! यदि पिङ्गल कविको परतंत्र कर डालता है; तो अंग्रेज़ भी एक 'पिंगल' हैं। क्योंकि, उनके शासनमें भी अनेक कवि परतंत्रता देवीकी उपासना करते हैं।

विश्व०—आजकलके हिन्दी कवि, 'मिल्टन'-को पढ़ सकते हैं; 'गोल्डस्मिथ'-की कविता समझ सकते हैं। 'टेनिसन', 'लाङ्गफेलो' और 'पोप'-को अपना आराध्य देव बना सकते हैं; परन्तु 'सूर', 'तुलसी', 'केशव', 'बिहारी,' 'देव' इत्यादि उनके सामने तुच्छ हैं।

गणेश—यह क्यों ?

विश्व०—यह इसीलिए होता है कि उनकी (लेखकों

की) बुद्धिका लालन-पालन होता है 'अंग्रेज़ी'-की गोदमें और बड़े होनेपर वे शृङ्गार करते हैं मातृभाषा हिन्दीका! तब यदि सारीके स्थान पर 'गाउन,' चूड़ीके स्थानपर 'रिस्ट-वाच,' चन्दनके स्थान पर 'पाउडर' तथा स्नेह-सिक्त वेणीके स्थान पर स्नेह-शून्य रुक्ष केश-कलापकी कल्पना करते हैं तो इसमें उनका अधिक दोष नहीं है। दोष है इस शिक्षा-पद्धतिका।

रमेश—'उनका दोष नहीं है,' यह आप कैसे कहते हैं? उन्हें अपने साहित्यका भी अध्ययन करना चाहिए।

विश्व०—यही तो वे भूल करते हैं। परन्तु इस भूल-को वे—"हिन्दी-सी सड़ी भाषा को क्या पढ़ें!"—कह कर टाल देते हैं।

(नेपथ्य में)

"बाबू जी चीठ्ठी है।"

विश्व०—देखो! गणेश! डाक तो ले आओ।

गणेश—जो आज्ञा।

(जाता है)

विश्व०—तो समझे रमेश ! हिन्दीकी उन्नतिके मार्गमें यही 'अंग्रेज़ी' एक बड़े भारी 'परन्तु'-का रूप धारण करके खड़ी है।

रमेश—गुरूजी, क्या आप अंग्रेज़ीका एकदम बहिष्कार करना चाहते हैं ?

विश्व०—कदापि नहीं। परन्तु मैं मात्रासे अधिक उसका प्रयोग भी नहीं चाहता। अंग्रेज़ीसे हमें उतनी ही सहायता लेनी चाहिए जितनी एक विदेशी भाषासे ली जाती है। उसे मातृभाषाके ऊपर बैठाना अपनी स्वतंत्रता-का अपमान करना है।

(गणेश का प्रवेश)

गणेश—लीजिए, यह एक लिफ़ाफ़ा तथा एक पैकेट है। कोई पत्रिका जान पड़ती है।

विश्व०—मुझे लिफ़ाफ़ा दो ; तुम 'पैकेट' खोल कर देखो उसमें क्या है ?

(गणेश विश्वनाथ को लिफ़ाफ़ा देकर 'पैकेट' खोलता है।)

रमेश—(मासिक-पत्र देख कर आश्चर्यसे) "सविता !!!"

विश्व०—क्या ? (लिफ़ाफ़ा फाड़ता है)

रमेश—ओहो ! "सम्पादक श्री युक्त पण्डित देव-कुमार जी, बी० ए० !"

गणेश—वाह ! वाह !! यह तो बड़ी शानसे निकला है।

विश्व०—(लिफ़ाफ़ा पढ़ते-पढ़ते) कौन पत्रिका है जी ?

गणेश—'वर्ष १', 'अङ्क १', 'पूर्णाङ्क १'

रमेश—वार्षिक मूल्य १०) रु० ! बापरे बाप !!

गणेश—(उलट-पलट कर) यह देखो पहली कविता—

रमेश—किसकी है ? 'कवि-सम्राट्' की ?

गणेश—हाँ जी ; उन्हीं की। "सम्पादक-महिमा !" वाह ! वाह !! (पढ़ता है) "यह है सबसे अच्छा काम।"

रमेश—अभी ठहरो ! पहले सब चित्र और 'शीर्षक' पढ़ लिये जायँ तब—

विश्व०—अरे ज़रा हमें भी दिखाओ !

गणेश—लीजिए ! (उलटता हुआ देता है)

रमेश (गणेशसे 'सविता' छीन कर) यह-यह देखिए ! "सम्पादक की वक्तव्य !"

विश्व०—क्या ?

गणेश--रमेश ! चश्मा लोगे ? 'का वक्तव्य'को 'की वक्तव्य' पढ़ते हो ?

रमेश—अजी वाह ! देख न लो। देखिए गुरूजी।

(विश्वनाथ को देता है।)

विश्व०-- (देख कर) ठीक है, गणेश ! रमेशकी बात ठीक है। इस लेख में जहाँ-जहाँ 'वक्तव्य' आया है वहाँ-वहाँ पर उसे लेखकने 'स्त्री लिङ्ग' माना है। इसी-को "प्रथम चुम्बने नासिका भङ्गः" कहते हैं।

गणेश--अच्छा, गुरूजी ! जरा पहली कविता पढ़िए

रमेश—हाँ-हाँ वही 'कवि-सम्राट्' वाली।

विश्व०--(कविता देख कर) हाय ! हाय !! इसमें तो दोषोंकी भरमार है।

गणेश—(आश्चर्य से) आयँ !!

विश्व०—सुनो—(पढ़ता है

"सम्पादक-महिमा"

"यही है सबसे अच्छा काम ।

बन सम्पादक किसी पत्रका जपना सीताराम !"

रमेश—वाह, वाह ! बड़ी सुन्दर रचना है । आखिर 'कवि-सम्राट्' ही हैं ।

गणेश—सुना है इन्होंने "एम० ए०" पास किया है ।

विश्व०—सुनो ! सुनो !! (पढ़ता है)

"सम्पादक है इन्द्र, लेखनी उसकी बनी पिनाक ।

रुद्र रूप धर वज्र-क़लम से करता झगड़ा साफ़ ।"

रमेश—अरे ! इन्द्रके हाथ में पिनाक ! वहाँ तो 'वज्र' चाहिए न गुरूजी ?

गणेश—और रुद्र के हाथ में वज्र ! वहाँ तो पिनाक चाहिए न गुरूजी ?

रमेश—बापरे ! "अन्त्यानुप्रास" कहाँ गया ? 'पिनाक' और 'साफ़' का अनुप्रास ?

विश्व०—रमेश ! समालोचना पीछे करना ; पहले सब सुन लो लो ! (पढ़ता है).

"सम्पादक चम्पा-प्रसून है लेखक भ्रमर-अनूप।
मंडलाया करते निशि-दिन हैं वे सब उसके पास।"
—"कवि सम्राट्"

रमेश- गुरुजी! मैं सम्पादक-'सविता'-से इन 'कवि-सम्राट्' महोदयका पता पूछ कर उनके पास यह पद्य भेज दूँ?

"सविता-सम्पादक होवेंगे हर्गिज नहीं उदास।
'कवि-सम्राट्' महोदय कुछ दिन आप छीलिए घास।"

गणेश- हाँ गुरुजी! जरूर लिखा दीजिए। बड़े बने हैं "कवि-सम्राट्"। 'चम्पा-प्रसून' पर 'भ्रमर मंडलाने' चले हैं।

विश्व०—शान्त रहो! इसकी समालोचना मुझे स्वयं करनी पड़ेगी।

कुछ हृदय

स्थान-रमारमण की बैठक ; समय दो पहर।

(आदित्यदेव एक पत्र पढ़कर रमारमण को सुना रहा है।)

आदित्य०--"इस 'सविता'-में ज्योतिका नितान्त अभाव है। इसकी कविताएँ अशुद्धियोंसे ओत-प्रोत हैं।"

रमा०--आर्य ! यह क्या मेरी पत्रिकाकी समालोचना पढ़ रहे हो ? कौन पत्र है ? लेखक कौन है ?

आदित्य०—यह "अशङ्क"-की ताज़ी प्रति है। समालोचक हैं प्रसिद्ध विद्वान पं॰ विश्वनाथ जी 'साहित्यरत्न।'

रमा०--इन्होंने एम० ए० पास किया है ?

आदित्य०—पहले समालोचना तो सुन लीजिए। आप आगे लिखते हैं—"उलूक-पक्षी और सूर्यमें स्नेह सम्भव हो सकता है और सम्भव हो सकता है काक-कण्ठ-में कोकिल-काकलीका होना ; परन्तु 'सविता' सम्पादक-का हिन्दी जानना मृत्यु-लोकमें अमृत-लाभ और क्रोधमें विवेककी तरह असम्भव है !"

रमा०—आश्चर्य! यह समालोचक भी कैसा मूर्ख है! क्या इसने 'सविता'-के मुख-पृष्ठ पर पं० देवकुमार जी-के नामके आगे "बी० ए०" न देखा होगा? आगे पढ़ो!

आदित्य०—"सविताके बी० ए० सम्पादकका हिन्दी-व्याकरणसे उतना ही परिचय जान पड़ता है जितना 'बिहाग'-का 'आसावरी'-से 'कजरी'-का 'होली'-से, 'मलार'-का 'चैता'-से और 'मोहन-भोग'-का 'पोलाव-' से!!"

रमा० ओह! (घृणासूचक आकृति बनाता है)

आदित्य०-(पढ़ता जाता है) "सम्पादक-महिमा" शीर्षक कविता पढ़कर उतना ही आनन्द हुआ जितना माघमें वृष्टिसे, वैशाखमें शीतसे, मोटर-दर्शनमें 'पेट्रोल'-की गन्धसे और खीरमें मक्खी पड़ जानेसे होता है!"

रमा०- (घबरा कर) अभी कितना बाकी है?

आदित्य० थोड़ा और है—"मेरी सम्मतिमें 'सविता'-से साहित्यका तब तक उपकार होना असम्भव है जब तक कि उसके सम्पादक महोदय हिन्दी-साहित्य-सम्मे

त्नसे 'विशारद'-की उपाधि न लेलें। व्यर्थकी चापलूसी न करके मैं हिन्दी प्रेमियोंसे अनुरोध करता हूं कि, वे इस पत्रको कदापि न अपनावें। नहीं तो व्यर्थमें साहित्य-की हत्याका पाप सिर पर चढ़ेगा। इस अप्रिय-सत्यके लिए, आशा है, मुझे 'सविता'-के सम्पादक और प्रकाशक क्षमा करेंगे। मैं 'पीपल को काटता हूं कि सीधी सड़क रहे।' बस।"

रमा०—क्यों आदित्य! इस समालोचनाका प्रभाव 'सविता'-के पाठकों पर पड़ेगा? मैं तो ऐसा नहीं समझता।

आदित्य०—समालोचक हिन्दी साहित्य संसारका विख्यात लेखक है; इस लिए कुछ चिन्ता होती है।

(अविनाश का प्रवेश)

रमा०—क्या है अविनाशजी, आपने 'अशक्त'-में अपने पत्रकी समालोचना देखी है?

अवि०—सब कुछ देखा है। 'सविता'-की ३०० वी० पी० याँ लौट आई हैं और प्रायः पचीस ग्राहक अपना मूल्य लौटाना चाहते हैं?

रमा०—हैं! यह क्यों?

अवि०—इसी समालोचनाके कारण !

आदित्य०—अब क्या किया जाय ? कुछ समझमें नहीं आता ।

रमा०—समझमें सब आ गया है। सब दोष मेरा है। न मैं 'भ्रेजुएट-गुलाम' होता, न यह दुर्दशा होती। अच्छा, अभी सवेरा है। एक पत्र लिखकर इन्हीं पं० विश्वनाथजीसे सम्पादक बननेकी प्रार्थना करता हूँ।

आदित्य०—पर वे ८०) रु० पर कैसे सम्पादक होंगे ?

रमा०—उन्हें २००) रु० मासिक दूँगा। अब मेरी आँखें खुल गई हैं।

आदित्य०—तब, पं० देवकुमारजी क्या करेंगे ?

रमा०—पहले 'विशारद' बननेकी चेष्टा; फिर 'सविता'-के उप-सम्पादककी कुर्सीपर बैठ कर पं० विश्वनाथ जी 'साहित्यवृक्ष'-के मरनेकी प्रतीक्षा।

सप्तम दृश्य

स्थान-देवकुमारका घर ; समय-प्रातः ।

(देवकुमार हाथमें 'अलङ्कार-मंजूषा' लिए सोचते हैं ।)

देव०—अनधिकार चेष्टा की मैंने और समालोचना की पं० विश्वनाथ जी 'साहित्यरत्न'-ने ; बीचमें बदनाम हुए बेचारे 'मेजुएट !' (ठहर कर) यह कौन अलङ्कार हुआ ? (सोच कर) 'विषमालङ्कार !' परन्तु वह तो— "अनमिल वस्तुओं वा घटनाओं के वर्णनमें" होता है । नहीं । 'विषमालङ्कार' नहीं हो सकता । 'असङ्गति' होगा । ठीक है । 'असङ्गति,' अलङ्कार के तीन भेद होते हैं । तो --यह कौन असङ्गति है ?

प्रथम :—

"कारण कहुँ कारज कहूँ देश काल को बीच ।"

ठीक है—बहुत ठीक है । उदाहरण भी :—

"और करै अपराध कोउ और पाव फल भोग ।"

अनधिकार चेष्टा की मैंने; समालोचना की उन्होंने; बदनाम हुए "ग्रेजुएट!" ठीक है।

(ललितका प्रवेश)

ललित—बाबू जी!

देव०—क्या है ललित! खाने चलूँ? आज बड़ी भूख लगी है।

ललित—चलिए।

देव०—परन्तु परीक्षा क़रीब है। अब 'विशारद' हुए बिना काम न चलेगा। यहाँसे रसोईघर तक जाने, पैर धोने, बैठने और खानेमें देर होगी। जाओ, यहीं रोटी ले आओ! यह कौन अलङ्कार हुआ? पहले मैंने कहा "खाने चलूँ," और फिर "यहीं रोटी ले आओ," कह कर प्रथम आज्ञाका निषेध कर दिया। यह कौन अलङ्कार हुआ?

ललित—बाबू जी!

देव० कुछ कह सकते हो ललित यह कौन अलङ्कार हुआ? अरे, तू क्या कहेगा। जब कि मैं ग्रेजुएट -फिर वही बात!—हाँ कौन अलङ्कार हुआ? अभी कल ही तो याद किया है—(सोच कर)...हाँ...यही—

"जहाँ कथित निज बातको समुझि करिय प्रतिषेध।
उत्ताक्षेप································।"

ठीक है! यह हुआ "उत्ताक्षेपालङ्कार।" उदाहरण? हाँ—

"प्रभु प्रसन्न ह्वै दीजिए स्वर्गधाम को वास।
अथवा याते फल कहा करहु आपनो दास।"

अच्छा एक उदाहरण मैं भी बनाऊँ?—

"मन! तज उप-सम्पादकी; लेकर ट्यूशन चार।
नहिं, नहिं, हिन्दी पढ़ि बने, सम्पादक सरदार।"

ठीक तो हुआ। पर यह 'बने' कुछ बिगाड़ता-सा जान पड़ता है।

ललित—बाबू जी!

देव०—(चौंक कर) तू अभी खड़ा है? अच्छा, चल बेटा! क्या करूँ, 'विशारद'-की परीक्षा देनी है; नहीं तो रोटीका 'रूपक' बिगड़ जायगा। यदि यह बात पहलेसे मालूम होती तो मैं 'ग्रेजुएट' होनेके पहले 'विशारद' हो गया होता। मेरे मुँहकी ओर क्या देखता है? क्या मेरे वाक्यमें व्याकरणकी कोई भूल है?

ललित—चलिए पिता जी!

देव०—चलो, बेटा!

बेचारा अध्यापक

प्रहसनके पात्र

(१) श्रीपुच्छन्दरनाथ—(पहले) स्कूलके शिक्षक (फिर) कालेजके अध्यापक।

(२) मायामय मिश्र—पुच्छन्दरनाथका (बधिर) मित्र।

(३) तरनतारन ठाकुर—अद्भुत विश्वविद्यालयके वाइस चांसलर।

(४) मिस्टर डेविल— „ „ प्रिन्सिपल।

(५) मिस्टर घोस्ट— „ „ एक प्रोफेसर।

स्कूल-इन्सपेक्टर, हेडमास्टर तथा छात्रादि

प्रथम दृश्य

स्थान—अनफारचुनेट हाई स्कूलकी एक कक्षा,

समय दोपहर।

(पुष्करनाथ कुर्सी पर बैठे हैं, उनके सामने मेज तथा छात्र-मण्डली है।)

पुष्कर०—देखो जिस समय इन्सपेक्टर साहब आयें, तुम लोग खड़े हो जाना।

१-छात्र—और आप ?

पुलं०—मैं भी खड़ा हूंगा, तुम लोग मेरा अनुकरण करना।

२-छात्र—अर्थात्, जब आप साहबसे हाथ मिलाने लगें, तभी हम लोग भी अपने हाथ उनकी ओर बढ़ा दें? साहबके 'यह कौन क्लास है?'-का उत्तर जब आप 'नाइन्थ ए सर!' कह कर दें, उसी समय हमलोग भी 'नाइन्थ ए सर!' बोल उठें?

पुलं०—बड़े पागल हो। मैं सब बातोंमें अनुकरण करनेको थोड़े ही कहता हूं, केवल उठनेमें तुम्हें मेरा अनुकरण करना होगा।

३-छात्र—इन्सपेक्टर किस जातिके हैं?

पुलं०—वह साहब हैं, उनका नाम है—मि० जे० गुडविन।

४-छात्र—वह ईसाई-म्लेच्छ है! आप पंडितजी उसे देखकर खड़े होइयेगा?

५-छात्र—पंडितजी किसे कहते हो जी? हमारे मास्टर साहब पंडितजी नहीं हैं, आप कलवार हैं।

६-छात्र—फिर भी म्लेच्छसे तो अच्छे हैं। क्यों पंडितजी ? आप क्यों खड़े होइयेगा ?

पुछं०—भाई, रुपयेके लिए सब कुछ करना होता है।

१-छात्र—मास्टर साहब, उसका रंग कैसा है ?

पुछं०—जैसा साहबोंका होता है।

२-छात्र—कुछ साहब तो बैंगनके रंगके होते हैं।

३-छात्र—कुछ कसेरूके।

४-छात्र—बहुतोंका रंग तेलकी पूड़ी-सा होता है।

५-छात्र—पर हमारे इन्सपेक्टर साहब बहादुरका रंग इन सभोंसे अच्छा, ठीक बंदर-सा है।

पुछं०—चुप भी रहो। बकबक लगाये हो। अब उनके आनेका समय हो गया है।

६-छात्र—मास्टर साहब दो पैसेका चना मंगालें।

(कक्षामें ठहाका)

पुछं०—अरे चुप !! मेरी बदनामी कराओगे क्या ? (आंखें दिखाता है) देखो एक बात ध्यानमें रखना। साहब हिन्दीके अच्छे ज्ञाता हैं। दो-चार प्रश्न अवश्य करेंगे। उत्तर ज़रा समझ कर देना।

१-छात्र—साधारण प्रकारसे, या साहित्यिक रीतिसे ?

पुछं०—साहित्यिक रीतिसे दे सको, तो अच्छी बात है। देखो इस प्रकार उत्तर......(जूतेका शब्द सुनाई पड़ता है) अरे, जान पड़ता है, आ रहे हैं ! सावधान !

(स्कूलके हेडमास्टरके साथ इन्सपेक्टर आते हैं ! पुछन्दरके साथ ही छात्र-मण्डली खड़ी हो जाती है)

इन्स०—सबलोग बैठ जाओ !

(पुछन्दरसे साहबका हाथ मिलाना। लड़कोंका बैठ जाना।)

इन्स०—(पुछंदरसे) आप क्या पढ़ा रहे हैं ?

पुछं०—(सशंक मुद्रासे) मैं ! हिन्दी साहब !

इन्स०—क्या मैं कुछ प्रश्न पूछ सकता हूं ?

पुछं०—मैं ! पूछिये ! बड़ी कृपा होगी। मैं !

(आंखें नीचे कर लेता है)

इन्स०—(छात्रोंसे) लड़को ! तुममेंसे कौन मुझे इस प्रश्नका उत्तर देगा कि—“रहीम कैसा कवि था ?” (पहले छात्रसे) तुम बताओ।

१-छात्र—(सोचकर) जैसा ‘रवि’ था !

इन्स०—(दूसरेसे) तुम बोलो !

२-छात्र वह तो 'पवि' था !

इन्स०—(तीसरेसे) तुम !

३-छात्र—अब साहित्यिक उत्तर नहीं हो सकता है। 'कवि, रवि, पवि, का प्रयोग तो 'था,' के साथ हो गया, एक 'छवि' भर बची है, सो उसके दर्शनोंके लिए 'थी'-को बुलवाइये !

इन्स०—पुरन्दर, यह क्या उत्तर मिल रहा है? अच्छा एक दूसरा प्रश्न —"लवकुशको किस ऋषिका बल था? (पहलेसे) तुम बोलो !

१-छात्र – जिसके आश्रममें कम्बल था !

इन्स०—(दूसरेसे) तुम !

२-छात्र—जिसका भोजन केवल फल था !

इन्स०—(तीसरेसे)—तुम !

३-छात्र जिसके चारो ओर जंगल था !

इन्स० (चौथे से) – तुम बोलो !

४-छात्र जिससे सात कोस पर छल था !

इन्स० —(पाँचवेंसे)—तुम !

५-छात्र— (स्वगत)—मुझसे तो साहित्यिक न

सकेगा, लेकिन उत्तर न देनेसे मास्टर साहब तो बिगड़ेंगे ही, हेडमास्टर भी अप्रसन्न होंगे। तब ?

इन्स०—बोलो !

५-छात्र—(स्वगत)—ठीक, सभोंको जोड़ दूँ ! (प्रकाश) हाँ।

इन्स०—जल्दी करो।

५-छात्र—जल, कम्बल, फल, जंगल, छल था- -(सब लड़के हँस पड़ते हैं)

इन्स—(हेडमास्टरसे)—जान पड़ता है, पुछंदरमें पढ़ानेकी क्षमता नहीं है। एक दम अयोग्य व्यक्ति हैं। चलिये !

(हेडमास्टरके साथ साहबका प्रस्थान)

पुछं०—(लड़कोंसे)—तुम सभोंने तो मार डाला !

द्वितीय दृश्य

स्थान—पुछन्दरका घर। समय तीसरा पहर।

(पुछन्दर बैठा विचार कर रहा है)

पुछन्दर—हमारे स्कूलमें इन्सपेक्टर आया—जैसे समुद्रमें तूफ़ान आता है, पृथ्वी पर आँधी आती है, दूधमें उफान आता है, वैसे हमारे स्कूलमें वह आया था। तूफ़ान जहाजको बहा ले जाता है, आँधीके प्रवाहमें वृक्षोंका अस्तित्व बह जाता है, दूधका उफ़ान मटकेका पेट खाली कर देता है, परन्तु इस इन्सपेक्टरने तो हमारी टीचरशिप-(टीचरीके जहाज)-को नष्ट कर दिया! स्कूलसे अस्तित्व मिटा दिया तथा नौकरी छुड़ा कर पेटके खाली रहनेका उपक्रम भी कर दिया! वह एक साथ ही तूफ़ान, आँधी और उफान था!

(मायामय मित्रका प्रवेश)

पुछं०—(आगंतुकको न देखकर)—अब क्या करूं! कहाँ पर आवेदन-पत्र भेज कर नौकरीकी याचना

करूं ? —(मायामयको देखकर)—आहा हा ! आप हैं ? बड़े अवसर पर आये !—(बिना हाथ जोड़े ही) प्रणाम !

माया०—(प्रणामको 'काम' सुनकर)—काम ? काम तो कुछ नहीं है। ऐसे ही आपको देखने चला आया हूं। और सब तो कुशल है न ?

पुछं०—कुशल ही है। आप अपना कहिए।

माया०—(कुछ और ही सुनकर)—कुछ नहीं है ? मैं अब न कहूं ? वाह ! महाशय ! वाह !! आप कुशल-प्रश्नसे भी असंतुष्ट होते हैं ? छमा* कीजिएगा। आपके कार्यमें संभवतः मेरे आनेसे कुछ विघ्न उपस्थित हो गया है ; अब जाता हूं, नमस्कार !

(गमनोद्यत)

पुछं०—(सप्तम स्वरमें)—धन्य हो प्रभो ! आप कुछका कुछ हो सुनते हैं। बैठिए, आपको जानेको कौन

* मायाजीको 'क्षमा'-के स्थानपर 'छमा,'-का प्रयोग करना वैसे ही अच्छा लगता था, जैसे कुछ विद्वानोंको बिहारीके दोहों-का अनर्थ अच्छा लगता है !—लेखक

कहता है? अभी आपसे बहुत सी आवश्यक बातें करनी हैं।

(एक कुर्सी आगे खिसका देता है)

माया—(बैठ कर)—कहिये, अभी आप क्या विचार रहे थे? आज इतने चिन्तित क्यों हैं?

पुछं०—आपने सुना नहीं, अनफारचुनेट हाईस्कूलसे मैं 'डिसमिस' कर दिया गया!

माया०—(कानपर हाथ लगा कर)—किशमिश भर दिया गया! कहां?—आपकी जेबोंमें? किशमिश कहांसे मिली, वहांका हेडमास्टर कोई अफ़गानी है क्या? अच्छा फिर किशमिश भरनेके बाद क्या हुआ?

पुछं०—(खीझकर)—अह! मायामयजी आपसे बातें करना भी एक संग्राम करना है। बाबा मेरे। मैं 'डिसमिस' कर दिया गया 'डिसमिस'!

माया०—'डिसमिस'—ऐसा क्यों नहीं कहते, अरे! आपकी नौकरी छूट गई? राम, राम, क्यों भाई साहब?

पुछं०—स्कूलका मुआइना हुआ था। इन्सपेक्टर आया था। बस उसीने—

माया०—कोई गोरा रहा होगा। छमा कीजियेगा, इन गोरोंके नीचे काम करना, बड़े खतरेका काम है।

पुछं०—परन्तु देवता, अब समझमें नहीं आता कि कौन-सा व्यापार कर जीवन-निर्वाहकी समस्याको हल करूं!

माया०—(कुछ और सुन कर)—हां, भैया मेरे! बिना छल किये इस संसारका काम नहीं चलता, अवश्य छल कीजिये!

पुछं०—(धीरेसे)—बधिरोंसे बातें करनेमें बुद्धिको भी नानी याद आ जाती है। हलको छल, दालको काल, रामको चाम तथा व्यापारको अत्याचार समझ लेना इनके लिए उतना ही सुगम है, जितना बाजका बटेरको पकड़ लेना, भारतीय अधिकारियोंका असहयोगियोंके अहिंसामय भाषणमेंसे हिंसाकी गन्ध निकाल लेना तथा पुलिस-वालोंका झूठ बोलना।

माया०—(कुछ नहीं सुनता परन्तु अपना बधिरत्व छिपानेके लिए स्वीकारत्व भाव दिखाते हुए सिर हिलाता है!)—ठीक है।

पुछं०—तब बताइये, अब क्या करूं ?

माया०—अरे आपने तो एम० ए० पास किया है, फिर आपको किस बातकी चिन्ता है? 'स्टेट्समैन' उठा-कर 'वाण्टेड' देखिए।

पुछं०—सो तो चार दिनोंसे बराबर देखता हूं। परन्तु कोई भी अपने मतलब लायक काम नहीं मिला।

माया०—अच्छा एक काम कीजिए।

पुछं०—कौनसा काम ? कहिए !

माया०—प्रकाशक बन जाइए !

पुछं०—प्रकाशक ?

माया०—हां, हां, इस व्यापारमें अपार धन है। एक-के चार मिलते हैं। तिस पर आप तो एम० ए० हैं!

पुछं०—पर पुस्तकें कहांसे आयेंगी ? आपसे हमारी कोई बात छिपी तो हुई नहीं। मैं स्वतः तो कुछ लिख ही नहीं सकता हूं।

माया०—इसका जिम्मा मैं लेता हूं। आजकल ऐसे अनेक हिन्दीके विद्वान हैं जो अंग्रेजीके पुछल्लोंके अभावसे भूखों मर रहे हैं। ऐसे दस-बीस गरभुखोंसे मेरा परिचय

है; उनमेंसे दो-चारको फाँस लेनेसे भी काम बन जायगा। वे साधारण रकम लेकर उत्तम-उत्तम पुस्तकें हमें देंगे और आप उन्हें श्रीयुत पुछन्दरनाथ एम० ए०-के नामसे प्रकाशित कीजिएगा। फिर देखिए। आपकी कितनी प्रतिष्ठा होती है!

पुछं०—(सोचनेकी मुद्रा)—हूं!

माया०—अरे महाशय! क्षमा कीजिएगा। चार ही सालके भीतर आपके पास लाखों रुपये हो जायँगे। और प्रतिष्ठा? आप सर्वश्रेष्ठ विद्वान गिने जायँगे। शायद सम्मेलनके सभापति भी चुन लिए जाँय!

पुछं०—आपकी सलाह तो निश्चय बहुत उत्तम है। मैं अवश्य इसके लिए सचेष्ट हो जाऊंगा। परन्तु (हाथ जोड़कर)— बिना इन चरणोंकी कृपाके कुछ न हो सकेगा।

माया०—इसके लिये आप निश्चिन्त रहें। आप मेरे मित्र हैं, मैं अपने मित्रके लिये सब कुछ कर सकता हूं। परन्तु क्षमा कीजिएगा.........(कहते-कहते चुप हो जाता है)

पुछं०—कहिए, कहिए!

माया०—यही कि लाभमें मेरा भी ध्यान रहे !

पुछं०—अवश्य, अवश्य ।

माया०—अच्छा तो अब आज्ञा दीजिये ।

पुछं०—जाइयेगा ?

माया०—हाँ, प्रणाम !

पुछं०—प्रणाम !

(मायामय भिक्षका प्रस्थान)

पुछं०—बड़ी उत्तम युक्ति है । मायामय ! निश्चय तुम हमारे सच्चे............

तृतीय दृश्य

स्थान—तरनतारन ठाकुरका भवन । समय—दोपहर ।

(प्रिन्सिपल डेविल, प्रोफेसर बोल्ड, तथा तरनतारन ठाकुर—वाइस चान्सलर 'अद्भुत विश्वविद्यालय'-में बैठे बातें कर रहे हैं)

तरन०—डेविल महाशय ! यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो एक बात पूछूं ।

डेविल—एस, (yes) आप बराबर पूछने सकता है।

तरन०—आप ब्राह्मण हैं न ?

डेविल—ओ एस सर, (O yes sir) आमारा लोग बराबर ब्रहमिन है।

तरन०—आप हिंदू हैं, ब्राह्मण हैं, विद्वान हैं, फिर भी शुद्ध हिन्दी नहीं बोल सकते ! छिः !!

डेविल—इण्डी ? आमने इण्डी को एक डामसे रद्दी लैंगवेज (Language) समजने माँगा। परा नेईं।

तरन०—(एक साँस खींचकर)—इसीसे तो हम गुलाम बने हैं। अपनी मातृभाषाको रद्दी भाषा कहना अपनी माताको गन्दो कहकर, पिताको मूर्ख कहकर तथा देवताको पत्थर कहकर, अपमानित करनेके बराबर ही है ! क्यों मि० घोस्ट !

घोस्ट—ओः तो हाम भी समझता है।

तरन०—पर, एक बात तो कहिये घोस्ट साहब ! आपका नाम घोस्ट कैसे पड़ा ? आप तो बंगाली हैं, और यह अंग्रेजी नाम !

घोस्ट—जब हाम बिलायत जाकर जर्मनीमें पी० एच० डी० पास किया, तब हामको हमारा आश्विन घोष नाम बड़ा बुरा मालूम हुआ—बस, चटपट अपना एक मित्रका सलासे ऊ नाम बदल कर नूतन नाम एडविन घोस्ट रख लिया।

तरुन०—(मि० डेविलसे)—और पण्डितजी, आपके 'डेविल' की क्या हिस्ट्री है ? क्या इस नाममें भी कोई मिस्ट्री (रहस्य) है ?

डेविल—(किञ्चित संकोचसे)— [illegible] ! आमारा नाम देवदत्त घोष था। 'एम० ए० आनर्स' होनेका बाद 'डेविल' कर दिया हम आमार नाम।

तरुन०—धन्य हैं आप लोग ! यदि आपको हिन्दुस्तानी भाषा पसन्द नहीं, वेश पसंद नहीं, नाम पसन्द नहीं, और खान-पान पसन्द नहीं है तो आप लोग ईसाई ही क्यों नहीं हो जाते ? जैसे हमारे अनेक भाई अछूत होनेके कारण, अन्न वस्त्रके अभावके कारण, तथा कभी-कभी किसी ईसाई-महिलाके कमल-नेत्रोंके प्रभावके कारण ईसाई हो जाते हैं, वैसे ही आप लोग भी बुरे नामके

कारण तथा बुरी भाषाके कारण ईसाई हो जाइये। व्यर्थमें अपने स्वर्ण सुन्दर देशको अपवित्र न कीजिये।

डेविल—(हाथ जोड़ कर)—आम बड़ा लज्जित है, छमा कीजिये।

घोस्ट—और हामको भी अपना कुकृत्य पर पश्चात्ताप है। निश्चय हाम अपना देशका प्रति बड़ा अन्याय किया।

तरन०—खैर, (डेविलसे)—आपने उस प्रश्न पर कुछ विचार किया ?

डेविल—किस पर ? हाँ, उस 'इण्डी-अध्यापकका जरूरत पर—?

तरन०—हाँ ! आप एक विज्ञापन 'प्रताप' में भेजनेके लिये प्रस्तुत कीजिये, मैं आता हूं। घोष महोदय ! आप भी देवदत्तकी सहायता कीजिये।

(तरनतारन ठाकुरका प्रस्थान)

डेविल—लिखिये मि० घोस्ट !

घोस्ट—नहीं, आप ही लिखिये।

डेविल—मुझे तो इण्डी आता ही नहीं।

घोस्ट--खैर, मैं ही लिखता हूं। हामको कुछ बहुत हिन्दी तो आता नेईं, हाँ, किसका भाषामें लिखेगा ? रस्किन का ?

डेविल—नो सर !

घोस्ट--डा० जान्सन ?

डेविल—नेव......

घोस्ट—तब ?--'टेनीसन' ?

डेविल—हाँ। मुझको तो यही दो 'टेनीसन' और 'मेकाले' साहबका भाषा बहुत पसन्द आता है। हाँ, अगर 'टेनीसन' लिखने बैठता तो यह विज्ञापन कैसे लिखा जाता ?

घोस्ट—वह ऐसे लिखता—

"जिस प्रकार जर्मनोंका जीवन मित्रोंका कृपाके बिना नहीं रह सकता और फ्रांसके हृदयका शान्ति जर्मनीके पतनके बिना, जिस प्रकार इंग्लैण्डके बैंकोंका पेट भारतवर्षका सहाय्य बिना नहीं भर सकता, और जापानका चीनको हड़पे बिना, ठीक उसी प्रकार 'अद्भुत विश्वविद्यालय' का जीवन-दीपक चंदा-स्नेहका अभावसे

बुझा जाता है, और उसका मिलना तब तक असंभव है, जबतक कि हिन्दीका प्रवेश उक्त विश्वविद्यालयमें न हो। अस्तु।......"

डेविल—(ताली पीटकर) -वेरी गुड! वेरी गुड! पर मि० घोस्ट! दोनोंको मिला देनेमें क्या बुराई है? आगेका मैटर 'मेकाले'-की भाषामें लिखिये।

घोस्ट—नहीं, नहीं, इसका कोई जरूरत नहीं। हाम पहिले ही ढंगसे इस बिज्ञापनको समाप्त करता है। अब उपर्युक्त 'अस्तु' के आगे सुनिये—

"जैसे जर्मनीको मित्रोंके चंगुलसे छूटना आवश्यक है, तथा फ्रांसका वास्ते जर्मनीको अपने हाथमें कर लेना, जैसे भारतवर्षको अपने रुपयोंको इंग्लेण्डमें जानेसे बचानेका आवश्यकता है, तथा चीनको जापानकी चालोंसे बचने-का; ठीक उसी प्रकार हमारे 'अद्भुत विश्वविद्यालय' को एक हिंदी-अध्यापकका आवश्यकता है।"

"वेतन योग्यतानुसार"......

डेविल—लिखिये.........३०) से ४०) रु० तक।

घोस्ट—अरे! इतना न्यून? अन्य भाषाका प्रोफे-

सरका तनखाह तो २००); ३००) से आरंभ होकर हजार-हजार तक जाय, और हिन्दीका प्रोफेसरको ३०) से ४०) तक ही ?

डेविल—इतना बहुत है।

(तरनतारनका प्रवेश)

तरन०—नहीं, नहीं, यह बहुत कम है। लिख दीजिये—"वेतन योग्यतानुसार ५०) से १५०) तक !"

घोस्ट—बस ?

डेविल—और नहीं तो क्या ?

-- ०--

चतुर्थ दृश्य

स्थान—कम्पनी बाग़, समय-संध्या पाँच बजे।

(मायामिश्र और पुछन्दरनाथ बैठे हैं)

पुछं०—सो भाईसाहब, 'प्रताप'-में उस विज्ञापनको पढ़ते ही, मैंने प्रिंसिपल-अद्भुत विश्वविद्यालयके पास एक आवेदन पत्र भेजनेका निश्चय कर लिया है। और, बड़े

परिश्रमसे उस आवेदन-पत्रका एक ड्राफ्ट तैयार किया है।

माया०—(कानपर हाथ लगाकर) तैयार कर लिया ? इतनी जल्दी ? छमा कीजियेगा। मेरे जानमें इस काममें इतनी शीघ्रता उचित नहीं, खैर। आप उसे यहाँ लाये हैं ?

पुछं०—हाँ हां, आपको सुनानेके लिये ही तो उसे ले आया हूं। सुनाऊँ ?

माया०—(कुछ और ही सुन कर) दया कीजिये। पहिले मुझे उस आवेदन-पत्रको दिखा दीजिये, तब गाइयेगा। गाना, रोना तो रोजहीका व्यापार है।

पुछं०—महाराज ! गानेको कौन कहता है ? मैंने तो सुनाने ही को कहा था।

माया०—अच्छा सुनाइये। जरा जोरसे पढ़ियेगा। (हँसकर) छमा कीजियेगा।

पुछं०—(आवेदन-पत्र पाकेटसे निकालकर)-- सुनिये—

"सेवामें,

बुद्धिमार्ग-कण्टक-कूर्ची, अखण्डमण्डलाकार, कहू-

मुल विश्वविद्यालय-पोत-पतवार, अनन्तबाल-मण्डली-तर-डाँड़ा, कुबुद्धि-कण्ठ-खाँड़ा, विश्वविद्यालय-भवन-दीपक, मूर्खता-गला-टीपक, श्री श्री श्री १०८ श्री प्रिन्सिपल डेविल महोदय की।"

माया०—(आश्चर्य मुद्रासे)—वाह ! अद्भुत है ! अपूर्व है !! हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें अद्वितीय है !!!

पुछं०—(पूर्ववत् पढ़ता ही जाता है)—"महाराज ! मैंने- -आपके कान्त-कोमल-युगल पाद-पत्थरके दासने- -हिन्दी-साहित्य-सरिताका भली प्रकार मंथन किया है, और जैसे देवासुरोंने एक बार उसे मथ कर सैकड़ों रत्न निकाले थे, वैसे ही मैंने भी अब तक १०-२० पुस्तक-रत्न उस सरितासे निकाल लिये हैं !"

माया०—(हँस कर)—भाई पुछंदरनाथजी ! मैं आपके मुंह पर आपकी क्या प्रशंसा करूं ! पर जो बात सच है, उसे कहे बिना रहा भी तो नहीं जाता। आज आपकी बुद्धि जिस प्रकार उन्नति कर रही है, उसे देख कर सृष्टि स्तम्भित हो जायगी।

पुछं०—(मुंह बना कर)—सब आप ही के चरणों-

की कृपा है। आगे सुनिए—"मैंने स्थानीय 'अनफार-चुनेट हाई स्कूल' में ५ वर्ष पर्य्यन्त शिक्षकका काम उसी योग्यतासे किया है जिस योग्यतासे 'बल्गेरियाके सेना-नीने 'अनवर बेग'-की चढ़ाईके समय विजित एड्रियानो-पलकी, तथा मित्र राष्ट्रोंने जर्मनोंकी चढ़ाईसे बेलजियमकी रक्षा की थी।

माया०—खूब! खूब!! इससे बेटा प्रिन्सिपल भी जान जायंगे कि आपकी पहुंच इतिहास-संसारमें कहांतक है, तथा आप उपमाओंका निर्वाह कहांतक खूबीसे कर सकते हैं।

पुछं०—(पढ़ता जाता है)—"मुझे मेरी योग्य-ताओंके अनेक प्रशंसापत्र मिले थे, जिनकी नकल मैं अवश्य यहां दिये होता—यदि उसे भगवान आतिश जला कर खाक न कर दिये होते।"

माया०—वाह! यहां पर 'उर्दू'की पुट तो बड़ी ही सुन्दर है!

पुछं०—(उसी स्वरमें)—"अब मैं अपने मतलब' पर उसी शीघ्रतासे आता हूं, जितनी शीघ्रतासे श्रीहनुमान-

जीके सगोत्री चने पर तथा गरुड़-गुलाम-गृद्ध मुर्दे पर! वह मतलब है आपके विद्यालयकी अध्यापकी। मैंने 'प्रताप'-में आपका विज्ञापन पढ़ा है, और उक्त स्थानके लिए अपनेको 'आफ़र' करता हूं।

माया०—अन्तमें अंग्रेज़ीकी छटा भी!

पुछं०—हां, एक बात तो भूल ही गया था। मैं एम० ए० पास हूं। आशा है, आप मेरा निर्वाचन अवश्य करेंगे। बस।

श्रीमानके

दासानुदासोंके दासोंका दास

"पुछल्लूरनाथ"

कहिये कैसा है?

माया०—(कान पर हाथ लगा कर) पैसा? है तो। पैसा क्या कीजियेगा? क्या इसे डाक-द्वारा भेजियेगा?

पुछं०—अजी नहीं, पैसा नहीं। पूछता हूं—कैसा है?

माया०—क्षमा कीजिएगा, बहुत उत्तम है।

पंचम दृश्य

स्थान—कालेजका एक क्लास। समय-दोपहर।

(अनेक विद्यार्थी बैठे बातचीत कर रहे हैं)

१-विद्या०—क्यों जी गणेश! हिन्दी पढ़ानेके लिए कितने अध्यापक नियुक्त हुए हैं?

गणेश—केवल दो अध्यापक, रामचन्द्र! इस चुनावमें बड़ा अन्याय हुआ है।

रामचन्द्र—अन्याय हुआ? कैसा?

गणेश—इस बातको देवकुमारसे पूछो। बताओ भाई देवकुमार!

देवकुमार—अरे बतायें क्या! हिन्दीकी दशापर दया आती है। हिन्दी पढ़ानेके लिये भी 'एम० ए०' की उपाधिकी आवश्यकता है। शायद, केशव, सूर, तुलसी भी अँग्रेज़ीके एम० ए० थे! क्यों गोविन्द!

गोविन्द—जान तो यही पड़ता है। तभी न हिन्दी भाषा-ज्ञानमें रामगरीब शास्त्रीके शिष्यकी योग्यता भी न

रखनेवाले पुछंदरनाथ मुख्य अध्यापक चुने गये, और बेचारा रामगरीब उनके नीचे हुआ है।

देवकुमार—दोनोंमें फ़र्क यही है कि पुछंदरने एम० ए०-की पूछ अपने पीछे जोड़ रक्खी है तथा रामगरीब अंग्रेज़ी भाषाका जानकार होते हुए भी दुमदार नहीं है।

राम०—इनका वेतन क्या निश्चित हुआ है ?

गणेश—रामगरीबका ४०) और पुछंदरका १५०) रूपये !

राम०—ओह ! इतना अन्तर ?

गोविन्द—हिन्दी अध्यापकोंकी इतनी कम तनख्वाह ?

राम०—धिक्कार है इस हिन्दी-प्रेमके ढकोसले पर !

देव०—और नहीं तो क्या।

राम०—अच्छा भाई, आओ एक काम किया जाय।

गणेश—क्या ?

राम०—हमारे क्लासमें कौनसे महाशय पधारेंगे ?

देव०—बा० पुछंदरनाथजी।

राम०—ठीक है। तब हमलोग उनकी योग्यताकी थाह आज क्यों न लें ? हम कालेजके छात्र हैं, कुछ स्कूल-

वालोंकी तरह परतन्त्र तो हैं नहीं।

गणेश—थाह लोगे कैसे ?

राम०—खूब कड़े-कड़े शब्दों, छन्दोंके अर्थ पूछकर।

देव०—बहुत ठीक, यही किया जाय।

गोविन्द—लो यह 'प्रिय-प्रवास'। इसीमें-से पूछना।

गणेश—अजी 'अमरकोष' ले लिया जायगा!

देव०—अच्छा, चुप रहो। शायद अध्यापक महोदय आ रहे हैं।

राम०—कोई खड़े मत होना। सब-के-सब बैठे ही रहो।

सब—हाँ हाँ।

(पुछन्दरनाथका प्रवेश)

पुछं०—(सबको बैठा देख कर) My Children Stand up! (मेरे बच्चो! खड़े हो जाओ!)

सब—Children? ओ, हो! (हँसते हैं)

(किसीको खड़े होते न देख कर पुछन्दरनाथ अपनी कुर्सीपर बैठ जाते हैं)

पुछं०—विद्यार्थियो! तुम्हें अपने अध्यापकके प्रति

सम्मान प्रकट करना चाहिए। याद रखो—मैं जैसे ही कहूं 'Stand up' ! तुम सब खड़े हो जाना।

सब—All right sir !—(बहुत अच्छा साहब !)

पुछं०—आज तुम लोगोंको 'अनसीन' पढ़ाया जायगा। कुछ पूछना हो तो पूछो।

राम०—(गणेशसे इशारा करता है)—क्यों जी आरम्भम् ?

गणेश—(धीरेसे)—अवश्यम्।

राम०—(पुछंदरसे)—Sir इसका क्या अर्थ है ?

"स्त्रोणान स्तन प्रत्य कठिना, गवेन्दु बिम्बानना।
तन्वङ्गी, कलहासिनी, गुरसिका, क्रीड़ा-कला-पुत्ली ॥"

पुछं०—(अलग रहकर)—बापरे बाप ! यह काहेका पढ़ रहा है !—(रामचन्द्रसे)—हाँ हाँ, बहुत ठीक है। यह तो रघुवंशके आठवें सर्गका प्रसिद्ध श्लोक है। यह तो कालिदासकी अपूर्व कविता है।

देवकुमार—हाँ पण्डितजी, ठीक कहते हैं। यह श्लोक रघुवंश ही का होगा। क्यों रामचन्द्र ! हिंदीके घण्टेमें रघुवंश ? बड़े भारी समझदार हो !

राम०—अजी, यह तो 'प्रिय-प्रवास' का वर्णन है।

पुछं०—हाँ हाँ, उसी आठवें सर्गमें महाराज अजका अपने 'प्रिय' इंदुमतीसे विछोह हुआ था। ठीक!

राम०—नहीं साहब, यह 'प्रिय-प्रवास' पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय-रचित महाकाव्य है।

पुछं०—(अर्द्ध स्वगत)—प्रिय प्रवास? हमने तो इसे कभी देखा भी नहीं है।—(प्रकट) अजी, इसे कल पढ़ना। इसका अर्थ बहुत देरमें समझ सकोगे। कुछ और पूछो।

सब—(हंसते हैं)—हा हा, हा हा!

देवकुमार—अच्छा पण्डितजी! इसका अर्थ?—
"हो भद्र-भावोद्भाविनी वह भारती हे भगवते!"

पुछं०—(झिझक कर)—फिर प्रियप्रवास पढ़ने लगे?

सब—(हंसते हैं)—हा हा हा हा!

देव०—महाराज! यह तो 'भारत-भारती' में है।

पुछं०—ठीक कहते हो। मैं भूल गया था। यह पुस्तक तो पं० अयोध्यासिंह उपाध्यायने हाल ही में लिखी है। उनकी कविताएँ बड़ी ही क्लिष्ट होती हैं।

सब—(हंसते हैं)—हा हा हा हा !

पुछं०—(बिगड़कर)—तुम लोग इतना हँसते क्यों हो ?

गणेश—मास्टर साहब ! देवकुमारने जो पद्य-खंड आपके प्रत्यक्षमें प्रतिध्वनित किया है, वह बा० मैथिली-शरणगुप्तजीकी रचना है ; वही 'भारत-भारती'-कार हैं।

पुछं०—(अर्द्ध स्वगत)—यह लड़का तो शब्द भी कठिन-कठिन बोलता है ! (प्रकट) हाँ हाँ, मैं जानता हूं ; बा० मैथिलीशरणजीसे मुझसे खूब परिचय है।

गणेश—इस वाक्य-समूहका क्या अर्थ होगा ?—"त्र्यम्बक सखाने त्र्यम्बकको त्रेतामें त्रिकूट पर्वतपर त्रिदशारिसे वार्तालाप करते अवलोका था।"

पुछं०—इसका—इसका अर्थ ? यह तो बहुत साधारण है। 'कोष' की सहायता लो।' तुम तो कालेजके सीनियर विद्यार्थी हो।

गणेश—बहुत ठीक ! अच्छा इसका अर्थ ?

"नभ लाली चाली निशा, चटकाली धुनि कीन।
रतिपाली आली अनत आये बनमाली न॥"

पुछं०—अहँ, इसे क्यों पूछते हो? रामायण तुम्हारे कोर्समें कहाँ है?

(तेजीसे प्रिन्सिपल डेविलके साथ वाइस चान्सलर तरनतारन ठाकुरका प्रवेश)

तरन०—प्रोफेसर साहब? यह रामायणका दोहा नहीं है, बिहारी सतसईका है। राम राम! आप इतना भी नहीं जानते? हो चुकी आपसे अध्यापकी।—(प्रिन्सि-पलसे) महाशय, आपने योग्यताका विचार किये बिना ही इन्हें श्रीरामगरीब शास्त्रीके ऊपर स्थान दिया है। मुख्याध्यापक रामगरीबजी ही होंगे। वे एम० ए० नहीं हैं तो क्या! (पुछंदरसे) अभी आप कुछ दिनों तक हिन्दी-साहित्य-समुद्रमें डुबकियां लगाइये, तब मुख्याध्या-पक बनियेगा। इधर आइये, आपको रामगरीबजीका क्लास तथा रामगरीबजीको आपका क्लास लेना पड़ेगा।

(वाइस चान्सलर, प्रिंसिपल तथा पुछन्दरनाथजी जानेको तैयार होते हैं)

रामचन्द्र—(पुछंदरनाथसे)—मास्टर साहब ! दैवोपि दुर्बल घातकः !

तरन०—(डाँटकर) Take your seat ! (बैठ जाओ !)

बेचारा सुधारक

प्रहसनके पात्र

पुरुष—

सेठ पापीमल ढोंगिया—एक धूर्त्त सेठ।

सेठ घोंघामल ढोंगिया—पापीमलका छोटा भाई।

अनूपदेव—पापीमलका मित्र।

नवीनचन्द्र ढोंगिया—घोंघामलका पुत्र, पापीमलका भतीजा।

रमई अहीर, सारजण्ट, सिपाही, असहयोगी आदि।

स्त्री—

सेठानी—पापीमलकी स्त्री।

मायावती—वेश्या।

मायावतीकी माँ।

प्रथम दृश्य

(स्थान—सोनागाछी, समय—सन्ध्या ।)

[अपने मित्र अनूपदेवके साथ बातें करते हुए सेठ पापीमल ढोंगिया दिखायी पड़ते हैं]

पापी०—भाई अनूप ! कल तो मैं बाल-बाल बच गया ।

अनूप०—कैसे सेठजी !

पापी०—दस हजार खेलनेसे !

अनूप०—दस हजार बेलनेसे ! (आश्चर्याकृति बनाते है) तेरा सत्यानाश हो—किस चीजके बेलने ? लकड़ीके पत्थरके या लोहेके ?

पापी०—अजी तुम भी बड़े भारी कूढ़मग्ज हो किसी बातको एक ही बार सुनकर समझ लेना जानते ही नहीं।

अनूप०—(मुस्कराकर) अरे भाई सेठ ! हम तुम्हारे मित्र हैं इसी लिए—तेरा सत्यानाश हो—तुम्हारी बात सुनकर उसके लिये 'समझ लेने'-की आवश्यकता नहीं समझते। नहीं तो, यदि किसी दूसरे मिर्जापुरीको 'कूढ़-मग्ज' कहो और वह तुम्हें बिना समझे ही छोड़ दे तो मैं तुम्हारी टाँगोंके बीचमें-से निकल जाऊँ ! तेरा सत्या-नाश हो—मैं तो मित्र हूं मित्र।

पापी०—(हँसता है) हा हा हा हा। अब तो—'एक तो ऊंट दूसरे पहाड़ पर' वाली कथा हो गई !

अनूप०—(अपनीही धुनमें) हमारा पर्य्याय है—'दोस्त', 'फ्रेण्ड', 'हितू', 'शुभेच्छु', 'चापलूस'। (सिर हिला कर) नहीं नहीं—तेरा सत्यानाश हो—'चापलूस

हमारा पर्य्याय नहीं है। ख़ैर, उन बेलनोंकी क्या कथा है? कहो भी। तेरा सत्या...

पापी०—(बीच ही में टोक कर) पण्डित अनूप देव, आपका यह 'सखुन तकिया' बड़ा ही भद्दा है। (भवें तान कर) जब देखिये तब—'तेरा सत्यानाश हो। वाह। यह खूब रही।

अनूप०—क्षमा कीजियेगा सेठ जी, वैसा कहनेकी मुझे—तेरा सत्या...... (दाँतोंसे जीभ दबाता है)—आदत सी पड़ गई है। क्या कहूं—तेरा सत्यानाश हो।—हाँ, उन बेलनोंका क्या हुआ?

पापी०—(खीझकर) अरे बाबा मेरे! दस हज़ार रुपया बेल देनेसे बच गया। समझे?

अनूप०—(जोर देकर) तेरा सत्यानाश हो—रुपये भी बेले जाते हैं? यह तो मेरे बापको भी नहीं मालूम था।—ठीक, तभी वे गोल-गोल होते हैं। वाहरे भगवान। तेरा सत्यानाश हो; रुपये भी बेले जाते हैं। वाह जी सेठ पापीमल ढोंगिया, वाह। रुपये बेलते हैं। चाँदी क्या हुई आटा हो गया।

पापी०—(घुड़क कर) चुप रहो। बड़े समझदार बने हो।

अनूप०—(अपनी ही धुनमें) आज रुपये बेलते हो, कल लोहा बेलोगे, परसों पत्थर और अतरसों—तेरा सत्यानाश हो—फिर क्या बेलोगे ? विधाताकी खोपड़ी ? हा हा हा हा। रुपये बेलते हैं। बड़े सूरमा बने हैं। तेरा......

पापी०—(अर्ध स्वगत) बड़ा भारी ना-समझ है। (प्रकट) भाई साहब, बेलनेका अर्थ है नुकसान कर देना—घाटा उठाना—मुफ्तमें बर्बाद कर देना।

अनूप०—तेरा सत्यानाश हो—मुझे क्या मालूम कि बेल देनेका अर्थ नष्ट कर देना होता है। नष्ट कर देना—(सोचता है) किस आशयसे यह अर्थ माना गया है। बेल देनेसे तो रोटियाँ सुधर जाती हैं फिर यहाँ—तेरा सत्यानाश हो—यह नाश कैसा ? बेलनेसे ही तो सड़कका भी सौन्दर्य सुधरता है। फिर ?

पापी०—अरे दादा ! जाने भी दो, मैंने भी कहाँकी बात चला दी।

अनूप०—हाँ हाँ, अब तो समझ गया। बेलनेसे

यानी नुकसान कर देनेसे, घाटा उठानेसे (अर्ध स्वगत) तीसरा अर्थ क्या था? (सोचता है) तीसरा......तेरा सत्यानाश हो—तीसरा—यह—यह? हां, यही। मुफ्तमें बर्बाद कर देनेसे बच गये। कैसे बच गये? असल बात क्या है?

पापी०—असल बात सुनोगे ही? अच्छा सुनो। कल एकाएक मुझे मालूम हुआ कि ४६८६ नम्बरके मारकीनका भाव बम्बईमें १२॥) रुपये थान है। वही मारकीन यहां पर ११।) रुपये थानकी दरसे बिकता था। बस, मैंने यह समझ कर कि जल्दी ही यहांका भाव भी बढ़ेगा फौरन दस हजार थानकी खरीद कर ली।

अनूप०—वाह! सेठ जी वाह!! हो बड़े चतुर। तेरा सत्यानाश हो।

पापी०—सुनते भी हो। दो घण्टे बाद दूसरा तार आया कि उसी मारकीनका भाव बम्बईमें ही १०।) रुपये थान हो गया।

अनूप०—बड़ा अच्छा हुआ! और मुनाफा करो। दलालसे सट्टेबाज बनने चले थे न? तेरा सत्यानाश हो।

पापी०—लेकिन अपने लोग—जल्दी नुकसान उठाने वालोंमें तो हैं नहीं। उसी वक्त पहला, १२।।) रुपये दर वाला, तार लेकर बाबू 'अजीबचन्द गरीबचन्द'-की कोठीमें पहुंचा और इधर-उधर करके उन्हींके मत्थे उन दस हज़ार थानोंको पाथ दिया। अपनी दलाली मुनाफ़ेमें रही।

अनूप—तेरा सत्यानाश हो—हो तुम बड़े काइयां सेठ। बड़े धड़ल्लेके साथ कागजकी नाव चलाया करते हो—तेरा सत्यानाश हो।

पापी०—(हाथ जोड़कर) सब आपके चरणोंकी कृपा है महाराज! नहीं तो मैं किस लायक हूं।

अनूप०—पर देखो सेठ जी!—तेरा सत्यानाश हो—तुमने दलालीमें बड़े-बड़े पाप किये। इसीसे हम तुमपर बड़े प्रसन्न रहा करते हैं। क्योंकि कलिमें भगवान्‌का निवास-स्थान तेरा सत्यानाश हो—पापोंके बीचमें ही है।

पापी०—(आश्चर्य) पापोंके बीचमें। हँसी करते हो क्या अनूपदेव जी!

अनूप०—हास्य नहीं सेठ, देखते नहीं हो? यह तो रोजकी लीला है। अत्याचारी हँसते हैं—राज्य पाते हैं, अत्याचार पीड़ित रोते हैं—भूखों मरते हैं। तेरा सत्यानाश हो—अदालतमें जिसकी बगलमें थैली उसकी कीर्ति फैली। जिसका हुआ दिवाला बीसवीं सदीकी अदालतोंमें उसका मुहँ काला! इसलिये हमने यह सिद्धान्त निकाला कि झूठका बोलबाला—सचेका मुहँ काला' तेरा सत्यानाश हो!

पापी०—अभी उसका घर कितनी दूर है भाई!

अनूप०—किसका? तेरा सत्यानाश हो—माया-वती बाईका?

पापी०—हाँ, हाँ। उसका नाम मायावती है—आहा! बड़ा सुन्दर है।

अनूप—अभीसे—तेरा सत्यानाश हो—नाम ही सुनकर हाय! हाय! करने लगे। तब तो देखते ही तड़प उठोगे—तेरा स......।

पापी०—अभी उसका घर कितनी दूर है?

अनूप०—बस आही गये। यही—यही—अरे! यह

तो बन्द है ! तेरा सत्यानाश हो—कोई आया है क्या ?

(जंजीर खटकाकर)

बाईजी ! बाईजी !!

पापी०—(स्वगत) अनूपदेव क्या कहकर पुकार रहे हैं ?

अनूप०—बाई—ओ बाईजी !

पापी०—(स्वगत) समझा ! समझा ! इनकी आवाज भी तो साफ नहीं है शायद माईजी कह रहे हैं। यह बनारससे आई हुई नई रण्डी है। शायद वहाँ लोग ऐसे ही पुकारा करते हों। कहीं-कहीं स्त्रियोंको 'माई' कहा भी जाता है।

अनूप०—अब तुम पुकारो सेठ ! मैं थक गया। तेरा सत्यानाश हो सुनती भी नहीं है।

पापी०—(खूब जोरसे) माईजी ! ओ—माईजी—खोलो।

अनूप०—(ठठाकर) हाहाहाहा।

पापी०—(जोरसे) माईजी !! अरे बोलती क्यों नहीं हो—माई !!!

अनूप—तेरा सत्यानाश हो (हँसता है) हाहाहाहा! मार डाला रे।

पापी०—(बिगड़ कर) हँसते क्यों हो जी।

अनूप०—अरे सेठ! हाहाहाहा! तेरा सत्यानाश हो—हाहाहाहा।

पापी०—बड़े भारी ऊँट हो—अरे पागल हो गये क्या!

अनूप०—(हँसकर) अरे 'बाई!' बोलो, बाई। 'भाई' क्यों कहते हो?—तेरा स...हाहाहाहा! (कुछ रुककर) समझ गया। इस समय वहाँ पर कोई दूसरा शठ डटा है। आओ उधरसे—पिछले रास्तेसे—चला जाय (हँसता है) यार! भाई पापीमल! मायावती बाईको—तुमने 'भाई' बना दिया (हँसता है) हाहाहाहा।

(प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

स्थान—सेठ पापीमल ढोंगियाका घर, समय—रात्रि।

(अहीर नौकर और सेठानी)

सेठा०—क्यों जी रमई, तुम्हें मालूम है इस समय सेठ कहाँ गये हैं ?

रमई—मालकिन मालूम तो है। पर,...

सेठा०—'पर' क्या ? बताओ, कहाँ गये हैं ?

रमई—रानी...मैं कैसे बताऊँ ?

सेठानी—(बिगड़ कर) तुम तो बड़े खराब आदमी जान पड़ते हो। बताते क्यों नहीं ? नौकरीसे हाथ धोना चाहते हो क्या ? जल्दी बता दो—वह कहाँ गये हैं ?

रमई—(भयका भाव दिखाकर) वे ?—मालिक मेरे ?—रानी साहब ! सेठानी जी !

सेठा०—अरे बोलता है या बातें बनाता है ?

रमई—वे ?—कैसे कहूं ? मालिक मना कर गये हैं। कैसे......

सेठा०—(झिड़ककर) अच्छा। मालिक मना कर गये हैं तो जाने दो। मत बताओ। देखूं कौन मुंहजला मालिक तुझे कल इस घरमें रहने देता है। जाओ ! चले जाओ !!

रमई—(डरकर) मालकिन, वे रण्डीके यहाँ गये हैं, दोहाई रानीजीकी मेरा नाम सरकारसे न बतलाइयेगा।

सेठा०—अच्छा तुम बाहर जाओ।

रमई—(आँखें मटकाकर) नाराज हो गयीं माल-किन ?

सेठा०—बाहर जाओ ! सुनते नहीं हो !

(सेठानीकी ओर एक तृष्णामयी दृष्टि डालते हुए रमई धीरे-धीरे बाहर जाता है।)

सेठा०—(विचार करती है) रण्डीके यहां गये हैं ? क्यों ? उन्हें किस बातकी कमी थी, जो, परनारीके प्रेमके भिखारी बने ? मेरे पास क्या नहीं है। यह अवस्था—यह अद्वितीय यौवन—यह कमल नेत्र—यह चम्पक-प्रसून-निन्दक-तन-द्युति ! मेरे पास क्या नहीं है ? फिर भी मेरे सेठ रण्डीके चरणोंकी आराधना

करने गये हैं। (कुछ ठहर जाती है, सोचती है) जाने दो। मैं भी क्या सोचने लगी। पर, पर, ऐसे कबतक काम चलेगा ? इधर महीनोंसे सेठकी यही दशा है ? रातमें कब आते हैं, यह भी मुझे नहीं मालूम होता। (टहलने लगती है) पातिव्रत्य ! कलिमें पातिव्रत्य ! ऐसे पुरुषोंकी सोहबतमें पातिव्रत्य ! असम्भव—गैर मुमकिन ! यह भी कोई शास्त्र है, यह भी न्याय कहा जा सकता है ? कदापि नहीं। पति चाहे अधमाधिपति हो, पर स्त्रीको सावित्री होना ही पड़ेगा ! पति चाहे पचास स्त्रियोंकी आंखोंका शिकार बने, पर स्त्रियोंको परपुरुषोंके सम्मुख नेत्रोंके रहते हुए भी अन्धा बनना ही पड़ेगा ! वाहरे धर्म ! वाहरे समाज !! (रमईका प्रवेश)

रमई—आपने मुझे बुलाया है सरकार ?

सेठा०—तुम्हें ! नहीं तो। दरवाजेपर ऊंघ रहे थे क्या ?

रमई०—(भावमयी दृष्टि डालकर) नहीं सरकार।

(जाना चाहता है)

सेठा०—(रोककर) सुनो तो। कितने बजे हैं ?

रमई०—यही बारह बजते होंगे।

सेठा०—(हंसकर) दुर······पागल कहींका। अभी बारह बज गये ? अभी तो शाम हुई है। यह सुन घड़ी बज रही है।

(घड़ी ९ बजाती है)

रमई०—कितने बजे हैं मालकिन ?

सेठा०—नौ।

रमई०—नौ ? नौ पर बारह बजेंगे न ?

सेठा०—दुर······

(रमईका प्रस्थान)

सेठा०—(सोचती है) अब इसी रमईको ही देखो ! यदि सेठकी वेश्या मुझसे सुन्दरी है तो यह रमई, सेठसे कहीं सुन्दर है। सेठ धनी ही हैं न। रमई भी धनी है। सेठका रुपया धन है और रमईका रूप। (ठहरकर) पर मैं यह क्या सोच रही हूं ? छिः ! छिः ! परपुरुष······ (भवें तानकर) क्या हर्ज है ! जिसका पति पर-स्त्री-पर—वेश्यापर प्रेम करे उसे पर-पुरुषपर दृष्टि डालनेमें कोई भी हानि न होनी चाहिये। जरा फिर बुलाऊं,

देखूं······देखूं······। नहीं, नहीं। पर—हमारे सेठ रण्डीके यहां!······जरूर बुलाऊंगी। हँहँ स्त्री कोई चीज ही नहीं है! हमारा कोई अधिकार ही नहीं है! (बुलाती है) रमई! ओ रमई!!

(नेपथ्यमें)

"आया मालकिन!"

सेठा०—(विचारती है) आओ! रमई, देखो तो उस वेश्यासे मैं कम सुन्दरी हूं। उसके नेत्र मुझसे बड़े हैं? उसकी कमर मुझसे भी पतली है? उसके ओठोंमें मेरे ओठोंसे अधिक मिठास है? देखो तो! (सोचकर) पर—पर—

(रमईका प्रवेश)

रमई०—क्या आज्ञा है मालकिन!

सेठा०—(कुछ लजाकर) कुछ नहीं। जाओ। मैं देख रही थी कि तुम ऊंघ तो नहीं रहे हो।

रमई०—(मुंह बनाकर) तो जाऊं मालकिन!

सेठा०—हां।

(रमईका प्रस्थान)

सेठा०—(टहलती हुई) जवानी—ओह ! अद्भुत रचना है। स्रष्टाकी कोई भी सृष्टि इससे सुन्दर नहीं है।
(गाती है)

गान

जवानीका विचित्र व्यापार,
नया-नया नाद बजा करता है हृदय-बीनका तार।
इसमें करता ही रहता है एक एक को प्यार,
सार-युक्त बस प्रेम दिखाता और सभी निस्सार।
इस युगमें बनकर वीरोंको मार डालता मार,
सबके नेत्र थकित होते हैं बरसा कर जल-धार।
इसमें डूब अधिक जाते हैं, कम पाते हैं पार,
बचता है बस वही, दयामय लेते जिसे उबार।

(रुककर विचारती है)

ओह ! मैंने रमईको लौटा क्यों दिया ? तो—बुलाऊं ? हां, हां, इसमें हानि ही क्या है ? संसारमें सभी सावित्री नहीं हो सकतीं। (बुलाती है) रमई ! रमई !!

रमई०—क्या कहती हो मालकिन ? क्यों सङ्क कर रही हो ?

सेठा०—कुछ नहीं जरा यहां तो आओ। मेरे कान-

में इस बालीको तो डाल दो। मुझसे नहीं बनता है।

रमई०— ऐं! (आश्चर्य प्रकट करता है)

सेठा०—आओ, मुंह क्या बना रहे हो। हो बड़े नासमझ!

रमई०—(स्वगत) मैं यह क्या सुन रहा हूं? क्या इतना बड़ा खजाना मुझे मुफ्तमें ही मिल जायगा! न जाने इसके मनमें क्या है। (प्रगट) लाइये, पहना दूं।

(रमई सेठानीके हाथसे बाला लेकर पहनाता है। इसी समय घोंघामल ढोंगिया आ जाता है।)

घोंघा०—(रूखे स्वरमें) क्यों बे रमइया! यहां क्या कर रहा है? दरवाजा योंही खुला पड़ा है। यदि कोई आ जाय तो?

(रमई और सेठानी चौंक जाती हैं, रमई कान छोड़कर सेठानीसे दूर हट जाता है)

रमई—सरकार......यही...

(चुप हो जाता है)

घोंघा०—(डपटकर) पाजी कहीं का! चला जा यहांसे। गधा कहीं का! तू कामका आदमी नहीं है।

सेठानी—अरे बाबू, उसे क्यों बिगड़ते हो ? वह तो बहुत अच्छा आदमी है। मैंने ही उसे बुलाया था। जाओ रमई ! तुमने अभी खाया तो न होगा ? लो, (एक रुपया देकर) कुछ खा लेना।

(रमईका प्रस्थान)

सेठानी—(घोंघामलसे) देखते हो बाबू ! तुम्हारे भाई साहबका अभीतक कहीं पता नहीं है। न जाने कहां-कहां घूमा करते हैं। यह भी कोई भलमन्साहत है ?

घोंघा०—भाभीजी ! भाई साहबकी चाल आजकल बिगड़ती जा रही है। मुझे तो कभी-कभी बड़ा दुःख होता है। अब तो मैं अपना हिस्सा अलग करा लूंगा।

सेठानी—(रोनी सूरत बनाकर) ऐसा क्यों कहते हो बाबू ! तुम अलग हो जाओगे। राम, राम ! भला ऐसा भी कभी हो सकता है। मैं तुम्हें अलग होने दे सकती हूं। चलो खाना खा लो !
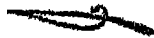
तृतीय दृश्य

स्थान—घरकी बैठक, समय—दोपहर।

(पापीगल छौंगिया तथा अनूपदेव बैठकर बातें कर रहे हैं।)

पापी०—भाई अनूप! महात्मा गांधीका यह असहयोग आन्दोलन मुझे बड़ा मीठा मालूम पड़ता है।

अनूप०—बड़ा मीठा? कितना?—जितना किसी भोलेभाले ग्राहकसे दूनी दलाली पाना, जितना किसी आपत्ति-ग्रस्त व्यक्तिको ८) सैकड़े सूदपर हजारोंकी गठरी देना, जितना घोड़-दौड़में जीतना, जितना किसी—किसी क्या उसी मायावली—वेश्याके चरणोंपर हजारोंकी थैली रखकर भी उसका प्रेम न पाना?

पापी०—अब पागल हो गये न?

अनूप०—तेरा सत्यानाश हो, पहली उपमाएं नहीं ठीक थीं? अच्छा लो जितनी मिठास—क्रूरोंको क्रूरतामें, शूरोंको शूरतामें, चापलूसोंको चापलूसीमें, मक्खीचूसोंको

कंजूसीमें—तेरा सत्यानाश हो—नौकरशाहीको दमनमें, बुलबुलको चमनमें, जीहुजूरोंको अधिकारियोंके चरन-चौपटमें नमनमें, सम्पादकोंको वाक्य-बाण प्रहारमें, कवियोंको चमत्कारमें, राजपूतोंको तलवारमें तथा आयरिश लोगोंको स्वदेशोद्धारमें दिखायी पड़ती है, शायद तेरा सत्यानाश हो, उतनी ही आपको भी महात्मा गांधीके इस आन्दोलनमें नजर आती हो। क्या अब ठीक हुआ ?

पापी०—अरे चुप भी लगाओ !

अनूप०—यह कहिये ! तेरा सत्यानाश हो, अभी नहीं ठीक हुआ। अच्छा—जितनी मिठास—मारवाड़ियोंको दादमें, दुर्बलोंको फरियादमें, आशिकोंको माशूककी यादमें, लेखकोंको पुरस्कारमें, भारतवासियोंको तिरस्कारमें, तेरा सत्यानाश हो, 'माधुरी'-को निस्सार-कलेवर विस्तारमें 'प्रभा' को राष्ट्रीय-भाव-विचारमें, सिविलियनोंको खद्दरसंहारमें व्यापारियोंको दर चढ़नेके तारमें प्राप्त होती है उतनी ?

पापी०—अरे बाबा, क्यों सिर चाटते हो ? मुझे मिठासकी तौल नहीं मालूम है, पर, इतना अवश्य है कि यह आन्दोलन है बड़े आनन्दका।

अनूप०—तब क्या फिर ? तेरा सत्यानाश हो और क्या चाहिये ? तीन दिवाले मारकर सेठ बने ही हो, अब मारवाड़ियोंके नेता भी बन जाओ। वाह् वाह् सेठ, तेरा सत्यानाश हो, बड़ी अच्छी युक्ति है। कल ही चारों ओर 'सेठ पापीमल ढोंगियाकी जय' सुनाई पड़ने लगेगी।

पापी०—नहीं भाई अनूप ! इससे कोई स्वार्थका सम्बन्ध नहीं है। महात्माजीका प्रोग्राम ही ऐसा है, उनका उद्देश्य ही ऐसा अपूर्व है कि हृदय पुकार उठता है कि जन्मभूमिके लिए कुछ कर चलो।

अनूप०—धन्य हो सेठ !

पापी०—जी चाहता है कि अन्य सब व्यापारोंको रोककर केवल खद्दरका व्यापार करूं। स्वदेशका भला सोचते हुए नमक-रोटी खाना पकवान खानेसे सर्वथा श्रेष्ठ है।

अनूप०—तो सेठजी ! तेरा सत्यानाश हो, अब दलाली न कीजियेगा ?

पापी०—नहीं।

अनूप०—तेरा सत्यानाश हो विलायती वस्त्रोंका बहिष्कार स्वीकार कर उनके संहारका मन्त्र शिरोधार्य कीजियेगा ?

पापी०—अवश्य।

अनूप०—तब तो तेरा सत्यानाश हो—सेठ !—अरे वह देखो ! नवीनचन्द्र आ रहा है।

पापी०—और उसके साथ वह दूसरा छोकड़ा कौन है ? पण्डित, यही सब पाजी नवीनको खराब किये डालते हैं। वह—दिनोदिन आवारा-सा हुआ जा रहा है।

अनूप०—सेठ, खूब कहा। तेरा सत्यानाश हो बहुत ही अच्छी बात सुनाई। तुम्हीं तो नवीनके आदर्श हो ? —फिर, तेरा सत्यानाश हो—पिताको क्या अधिकार है कि स्वतः कुपथ-गामी होकर लड़केको उपदेश देता फिरे।

(नवीनचन्द्रका एक साथीके साथ प्रवेश)

पापी०—(अनूपसे) चुप भी रहो ! लड़कोंके सामने ऐसी बात उठाते हो ! (नवीनसे) कहाँसे आ रहे हो बेटा ?

नवी०—बाजारसे।

पापी०—देखो, अभी तुम्हारी अवस्था बहुत कम है। बाजारमें अधिक न घूमा करो। कभी हम भी तुम्हारे ही ऐसे थे, पर, कभी बाजार जाते थे? अभीतक हमने कलकत्तेकी सैकड़ों गलियाँ नहीं देखी हैं।

अनूप०—(उसी स्वरमें) हाँ, सोनागाछीकी रत्ती-रत्तीके जानकार हैं!

पापी०—(घूर कर) क्या बकते हो पण्डित! (नवीनसे) बेटा, यह युग ऐसा है कि बिगाड़नेवाले हजारों मिल जाते हैं। पर कोई बनानेवाला लाल नहीं दिखाई पड़ता।

अनूप०—हई है। तेरा सत्यानाश हो—सेठने माया-वतीके पीछे हजारों रुपये बिगाड़ दिये पर क्या कुछ बन आया? बाप-दादोंकी कमायी थी फूंक दी। पर तुम बेटा ऐसा कदापि न करना।

नवी०—मायावती कौन बाबूजी।

पापी०—(झिड़ककर) कोई नहीं। आज अनूपने कुछ भंग अधिक छान ली है इससे अनाप-शनाप जो ही मनमें आ रहा है बक रहे हैं।

अनूप० —(बिगड़कर) अनाप-शनाप है सेठ ! अभी बताऊँ—तेरा सत्यानाश हो—वहाँ—सोनागाछी......

(क्रोधमें अनूप खड़ा हो जाता है)

पापी०—(डरकर) अरे बिगड़ गये अनूपदेवजी ! राम-राम । बैठिये, मैं तो हँसी कर रहा था ।

अनूप०—तो तेरा सत्यानाश हो—रोदन कौन कर रहा था ? मैं भी तो हँसी ही कर रहा था । नवीनको दिखा रहा था कि तुम्हारे उपदेष्टा बाबूजी स्वयं कितने गहरेमें हैं । तेरा सत्यानाश हो...हा हा हा हा यह हँसी नहीं है ।

पापी० —(बात उड़ाकर) नवीन, यह तुम्हारे साथी कौन हैं ?

नव०—यह एक बड़े कुलीन ब्राह्मण हैं । हमारे शुभेच्छु हैं ।

पापी०—हैं हैं हैं अच्छा ! जाओ, घरका कामकाज देखो । कुछ लिखो-पढ़ो ।

नवी०—बहुत अच्छा—(प्रस्थान)

पापी०—(अनूपसे) भाई साहब, तुम भी बड़े

विचित्र आदमी हो। सबके सामने एक ही भावमें रहते हो, समय-असमयका कुछ भी ध्यान नहीं रखते।

अनूप०—फिर ? इसमें ही तो आदमीयत है। हम आपकी तरह बे-पेंदीके लोटे थोड़े ही हैं। तेरा सत्यानाश हो—वाह। अपने लोगोंका सिद्धान्त है—

"हरदम कहना साफ साफ डरना न किसीसे,
रहे खरा व्यवहार भूप या रंक सभीसे।"

आपको यदि मेरी बातें नहीं रुचतीं तो अपने घर बैठिये। (जाते-जाते) तेरा सत्यानाश हो, हम सेठ-फेठको तृणवत् मानते हैं।

(प्रस्थान)

पापी०—विचित्र आदमी है। इसको असन्तुष्ट करनेमें कल्याण नहीं है। यह हमारे एक एक पुर्जेसे जानकारी रखता है।

चतुर्थ दृश्य

स्थान—मायावतीका घर, समय—सन्ध्या।

(मायावती टहलती और गाती है।)

गाना।

विचार देखा है खूब मैंने हमारी दुनिया अलग बनी है,
नहीं किसीसे है मेल इसका हमारी दुनिया अलग बनी है।
जो वक्त रोनेका है हमारे उसे हँसीमें गुज़ारती हैं,
हँसाके औरोंको हैं रुलाती हमारी दुनिया अलग बनी है।
ज़माना कहता है प्रेम जिसको उसीसे है दुश्मनी हमारी,
हृदय लगाके हैं रक्त पीती हमारी दुनिया अलग बनी है।

मायावती—रूपका व्यापार,—बड़ा नीच है। अत्यन्त घृणित है। नरक यही तो है। जहाँ बात-बातमें आत्माका अपमान होता हो—हृदयकी अ-प्रतिष्ठा होती हो—वहीं नरक होता है। यही तो हमारी भी अवस्था है। सहृदय हो या हृदयहीन, रूपवान हो या कुरूप, आदमी हो या आदमीके रूपमें दो पैरोंवाला जानवर इससे हमें क्या? हमारा 'प्रेम' है रुपया, 'रूप' है धन,

'हृदय' है सुन्दर अलंकार !! विकट पराधीनता है। हम जी-भरके किसीको चाह नहीं सकतीं ! इच्छा होनेपर भी 'हृदय-दान' ऐसा अमरपुण्य करना हमारे शास्त्रमें निषेध है। हाय !! हमारी सृष्टि क्यों हुई ? विधाताने इस कलुषित-कलेवरकी कलंक-मयी-कल्पना ही क्यों की ?

(मायावतीकी माताका प्रवेश)

माँ—बेटा !

माया०—(न सुनकर) हमारा यह पवित्र सौन्दर्य—जिसका अधिकारी किसी देवता ही को होना चाहिये था—समाजके राक्षसोंकी सम्पत्ति है ! हाय, हाय, हम स्त्री-जातिका कलंक हैं। हममें स्त्रीत्वका एकदम अभाव है ! (सोचनेका भाव दिखा कर) सुना है स्त्रियोंका भूषण लज्जा है ! लज्जा है ? कौन कहता है लज्जा है ? जरा हमारी ओर भी देखो। यह लज्जा कौन जीव है ? क्या यह कोई नूतन आविष्कार है ? (रुक कर) हम तो ह ह ह—पत्थरकी दीवारका हृदय चीर कर एक खिड़की बनवाती हैं और उसीमेंसे संसारको एक दृष्टिसे देखती हैं। किसीकी आँखें हों,—कैसी भी आँखें हों—

हम उनसे अपनी आँखोंको भिड़ा देती हैं, और—फिर पूछती हैं—'रुपये हैं ?' लज्जाके पक्षपाती बतायें तो उनकी लज्जामें भी इतनी शक्ति है ?

माँ—बेटी ! (स्वगत) फिर भी मेरी आवाज़ उसके कानोंमें नहीं पड़ी ! हाय ! जान पड़ता है मेरी तक़दीर फूट गई—लड़की बे-हाथ हो गई !! (प्रकट) माया !

माया०—(चौंक कर) माँ ? क्या है ?

माँ—क्या पगलियोंकी तरह बकबका रही है ?

माया०—पगलियोंकी तरह ? पगलियाँ भी योंही बका करती हैं ? माँ तब, तो पगली होना बड़े भाग्यसे होता होगा।

माँ—बेटी ! एक नौजवान सेठ आया हुआ है।

माया०—(त्योरियाँ चढ़ा कर) सेठ है ? नौजवान भी है ? पूछो माँ उसे क्या चाहिये—आग ?

माँ—मायावती, आजकल तू कैसी चिड़चिड़ी हुई जा रही है। अपने घरपर आनेवालोंसे भी कोई ऐसे प्रश्न करता है ? भला ऐसे भी किसीका व्यापार चलता है ?

माया०—(ठंढी साँस लेकर) ठीक कहती हो माँ !

ऐसे कैसे चलेगा। वह—रूपका व्यापार ऐसे कैसे चलेगा ? जाओ उन्हें बुला लाओ—जाओ माँ। तबतक मैं अपने बालोंको सँवार लूं—तरवारपर सान चढ़ा दूं।

(माताका प्रस्थान)

माया०—(हाथमें कंघी लेकर आईनेके सामने जाती है। उसमें अपना मुख देखती है) अहा ! यह सौन्दर्य—कैसा मनोमुग्धकर है। ये भोली-भोली आँखें—कैसी सीधी जान पड़ती हैं ? पर—इनसा टेढ़ा, इनसा चतुर संसारमें और कोई भी जीव नहीं है ! इन लाल-लाल रति-दुर्लभ ओठोंको चूमनेके लिए एक भी हृदयवान नहीं मिला। चूम तो हजारों गये, पर कैसे ? जैसे सर्प किसीका पैर चूमता है, शिकारीका तीर किसी मृगका मस्तक चूमता है !! हाय अभागे अधर ! तुम्हारा जीवन व्यर्थ हुआ। तुम्हें एक भी सच्चा—देव-दुर्लभ, सुधा-सिक्त, पृथ्वीको स्वर्ग बना देनेवाला—चुम्बन नहीं मिला ! तुम तड़प-तड़पकर रह गये ! अच्छा आओ ! इसी स्वच्छ-हृदय दर्पणको साक्षी रखकर मैं ही तुम्हें चूम लूं—दीन-श्रम—पिपासाकुल अधर ! आओ !!

आईनेमें अपनी छायाको चूमनेके लिए मुख निकट ले जाती है। इतनेमें दरवाज़ा खोलकर आते हुए नवीन-चन्द्रकी छाया भी आईने पर पड़ती है। (क्योंकि आईना दरवाजेके ठीक सामने ही था।)

माया०—(चौंककर) तुम!—तुम क्यों आये! भूखेको भोजन देने दो!—बाधक क्यों बनते हो? प्यासेको चार बूंद जल पी लेने दो, रोकते क्यों हो?—पर...परन्तु—दूकानका समय हो गया! हाय—ग्राहकके लौट जानेका डर है!! (आईनेसे दृष्टि हटाकर) अहा—आप आ गये। मेरे धन्य भाग्य! बैठिये।

नवीन०—(बैठकर) परन्तु देवि, मेरे आनेका उद्देश्य कुछ और ही है!

माया०—आपका कुछ भी उद्देश्य हो—हमारा तो एक ही है। बताइये तो—मेरी आँखें कैसी हैं?

नवीन०—क्षमा कीजिये। मेरा आपसे कोई दूसरा मतलब है।

माया०—दूसरा मतलब क्या?

नवीन०—एक चोरको गिरफ्तार करना है!

माया०—चोरको ? आप पुलीसवाले हैं ? मेरे यहां चोर कहां ?

नवीन०—श्रीमती—वह साधारण चोर नहीं है। हमारे घरका आदमी—मेरे पिताका बड़ा भाई है। उसकी चोरी भी असाधारण होती है—वह देशकी आंखोंमें धूल डालकर यशकी चोरी करता है, अपनी स्त्रीकी आंखोंमें धूल डालकर वेश्या-प्रेम अपनाता है। क्या ऐसे आदमीको आप चोर नहीं समझतीं ?

माया०—समझती तो सब कुछ हूं। परन्तु इस बातका संबन्ध तो हमारी दूकानदारीसे है।

(मायाकी माताका प्रवेश)

मां०—बेटी ! सेठ पापीमल आ गये हैं।

माया०—इसी जगह बुला लो मां !

मां—(नवीनकी ओर दिखाकर) ये बाबू साहब भी यहीं रहेंगे ?

माया०—हां कोई हानि नहीं, जाओ !

(माताका प्रस्थान)

माया०—यही आपके चोर हैं न ? आपका और

उनका मुख मिलता है। कहिये मैंने कैसा पता लगाया।

नवीन०—अच्छा तो मुझे कहीं छिपाइये।

माया०—(उंगली दिखाकर) आप उस कोठरीमें चलिये।

(नवीनचन्द्र एक कोठरीमें चला जाता है। अनूप देवके साथ पापीमलका गांधी-फैशनमें प्रवेश)

माया०—(उठकर) अहा हा—आजका यह वेश कैसा? सेठजी, क्या आपने वैराग्य ले लिया है?

अनूप०—तेरा सत्यानाश हो—वैराग्य लेंगे। अरे इनका यही वेश महीनोंसे है। और दिन तो—तेरा सत्यानाश हो—तुम्हारे यहां दूसरे कपड़े धारण करके आते थे, आज समय नहीं मिला, सभामें देर हो गयी थी, इसीसे सीधे तुम्हारे ही यहां चले आये। माया! हा हा हा हा—तेरा सत्यानाश हो—आज सेठजीने भी व्याख्यान दिया······हा हा हा हा—था।

पापी—(पैरसे अनूपका पैर दबाकर) चुप भी रहो आते ही फजूलकी बात ले उठे (मायावतीसे) आज तुम उदास-सी क्यों हो प्रिये?

माया०—(पापीमलकी बातोंको अनसुनी करके अनूपसे) हां, कहिये तो सभामें सेठजीने कैसा व्याख्यान दिया था ?

अनूप—(ठठाकर) हा हा हा हा। बहुत ही अच्छा हा हा हा हा।

पापी०—(अभिमान-सूचक भाव बनाकर) अरे, आज तो पहले-पहल मैं खड़ा ही हुआ था, यदि दो-चार बार और बोलूं तो अच्छे अच्छे व्याख्यान-दाता मुंह ताकने लगें।

अनूप०—हा हा हा हा। तेरा सत्यानाश हो—हा हा हा हा।

माया०—आप हँसते क्यों हैं पण्डितजी ?

अनूप०—इसीलिये कि इनका भाषण बड़ा ही सुन्दर हुआ था— हा हा हा हा।

माया०—कुछ बताइये भी कैसा हुआ था।

पापी०—यह क्या बता सकेंगे। मैं ही बताता हूं।

अनूप०—तेरा सत्यानाश हो—मैं ही ठीक बता सकूंगा। सुनिये बीबीजी ! सभापतिके मुखसे ज्योंही तेरा

सत्यानाश हो—ओपापीमल ढोंगिया निकला त्योंही आप टेबिलपर खड़े हो गये। सभापतिने धीरेसे कहा—आपका समय है तीन मिनट।

पापी०—समयसे क्या होता है। एक जगह महात्मा तिलकने केवल ५ मिनटमें स्वराज्यका सार बताया था।

माया०—(अनूपसे) फिर ?

अनूप०—आपने तेरा सत्यानाश हो—बोलना आरम्भ किया।—"सब गुण आगार, सकल गुण निधान, सर्वगुण सम्पन्न, सर्व गुण आकर, सर्व गुण-मय आये हुए उपस्थित सज्जनों! तथा, समयोगिनी, देवि स्वरूप, मातृरूपा-अनूपा भगिनियो !"—हा हा हा हा तेरा सत्यानाश हो।

माया०—(मुस्कराकर) हंसते क्यों हो पण्डितजी!

पापी०—घोंघा हैं, इसलिये हंसते हैं और क्यों!

अनूप०—इसलिये नहीं। मेरे हंसनेका कारण यह है कि आपके इतना कहते-कहते आधा समय समाप्त हो चुका था।

माया०—फिर ?

अनूप०—सेठजी आगे बोले—"इस समय, जब कि हमारे पूज्य पिता तुल्य, दादा तुल्य, आजा तुल्य, गुरु तुल्य दादागुरु तुल्य और अधिक क्या कहूं बड़े विद्वान, बड़े श्रीमान, बड़े कर्मवीर, बड़े धर्म-धीर, बड़े वक्ता, बड़े उदार चेता, बड़े नेता सभापतिजी विराजमान हैं, तब मेरा—एक अत्यन्त मूर्ख, भारी गधे, उल्लू, बे-समझ-का कुछ बोलना................।" हा हा हा हा—तेरा सत्यानाश हो—बस इतनेहीमें सभापतिने घण्टी बजा दी। हा हा हा हा—समय हो गया! तेरा सत्यानाश हो।

पापी०—(बिगड़कर) ऐसा कब हुआ था। बड़े भारी झूठे आदमी हो।

माया०—तब क्या हुआ?

अनूप०—तब? नहीं, न बताऊंगा। सेठ असन्तुष्ट हो जायगा। तेरा सत्यानाश हो—आप आगेकी कथा न पूछिये। हा हा हा हा!

माया०—नहीं आपको बताना होगा।

अनूप०—बताऊं? इसके बाद सेठने दो मिनटका समय और मांगा, पर—हा हा हा हा—तेरा सत्यानाश

हो - जनता चिल्लाने लगी। 'घोंघा है!'--'चोंच है!!' हा हा हा हा!

पापी०—(क्रोधसे) माया, आज यदि यही व्यर्थकी बातें करनी हैं तो मैं जाता हूं। (गमनोद्यत)

माया०—नहीं-नहीं। बैठिये। जनाब मन! मेरी आंखोंपर बैठिये। शराब लाऊं (अनूपसे) आने दीजिये पण्डितजी।

(अलमारीमेंसे शराबकी बोतल और प्याली लाकर रख देती है। पापीमल पीना आरम्भ करता है।)

पापी—(मायावतीके गलेमें हाथ डालकर) कुछ गाओ मेरी जान!

अनूप०—मैं गाऊँ श्रीमान्!

पापी०--तुम?—अच्छा, तुम्हीं कोई अच्छा गाना गाओ!

अनूप०—सुनिये--

गाना

अभागे भारत! आकर देख!!
करते हैं अनर्थ तेरे सुत बिना मीन औ मेख।

जो दस-बीस सुपुत्र चाहते हैं तेरा उद्धार,
तो मारते कुठार मूलपर पापी सदृश हजार !
जो दो-चार अगार परिश्रम कर कहते—'मां जाग !
तो कह मृतक पचासों रखते उसके मुखपर आग ??
अभागे भारत ! आकर देख !!

(तेजीसे नवीनचन्द्रका प्रवेश)

नवीन—बाबू जी !

पापी०—(सिटपिटाकर भतीजेकी ओर देखता है और बोतलको मेजके नीचे रखकर छिपानेकी चेष्टा करता है ।) नवीन ! तुम यहां पर कैसे आये !

नवीन०—ऐसे ही बाबूजी ! आपकी लीला देखने—आपके महत्वकी परीक्षा लेने । बस, अब जाता हूं । आप अपना शराब-कबाब आरम्भ कीजिये ।

(प्रस्थान)

माया०—(क्रोधसे) आरम्भ करेंगे । ऐसे नीचोंके लिए हमारे घरमें स्थान नहीं है । ये अभीतक अपने आपको धोखा दे रहे थे, पर, अब स्वदेशको छलने चले हैं । मैं वेश्या हूं तो क्या, ऐसे पामरको अपने यहां न रहने दूंगी । पापीमल ! चुपचाप अपनी इज्जत बचाकर

मेरे घरके बाहर चले जाओ ! अब कभी अपना मुख मुझे न दिखाना। आजसे मैंने इस जघन्य—वेश्या-वृत्तिका त्याग कर दिया है।

(नीचा सिर किये पापीमलका तथा हँसते हुए अनूपदेवका प्रस्थान।)

माया०—नीच ! स्वदेशको धोखेमें डालता है। इनसे तो वेश्या ही अच्छी हैं।

पंचम दृश्य

स्थान—पापीमलका घर, समय—दो पहर।

(घोंघामल हाथमें 'बिल्टी' लिये विचार करता है)

घोंघा०—यह विलायती कपड़ोंकी 'बिल्टी', बम्बईसे हमारे भाई साहबके नाम आई है। क्या कहूं इनसे तो मैं हैरान हो गया। इतना लालच, इतना लोभ ! न जाने किस दिनके लिए यह पापकी गठरी बांध रहे हैं। दो-चार दिनोंके लिए असहयोगी भी बने, खद्दर भी अपनाया, व्याख्यान भी दिये—पर अन्तमें वहीके वही रहे।

कुत्तेको हजार चन्दन लगाओ पर वह बिना मल-मूत्र स्पर्श किये सुखी हो ही नहीं सकता ! राम ! राम !!

(अनूपदेवका प्रवेश)

घोंघा०—पण्डित जी, पालागन।

अनूप०—प्रसन्न रहिये सेठ घोंघामल जी। आपने कोई नया समाचार सुना है ?

घोंघा०—कैसा ?

अनूप०—तेरा सत्यानाश हो—अपने बड़े भाईके बारेमें।

घोंघा०—नहीं तो, मैंने तो कोई भी नूतन सम्बाद नहीं सुना है। कहिये भी क्या हुआ ?

अनूप०—कुछ नहीं। यही फाटकेके खेलमें, तेरा सत्यानाश हो, चालीस हजारका घाटा दिया है।

घोंघा०—चालीस हजार ! बस। अब हो चुका। ऐसे उद्देश्यहीन पतितके साथ मेरा सम्बन्ध समाप्त हो चुका।

अनूप०—अरे इतना मत बिगड़ो सेठ। तेरा सत्यानाश हो—अब पापीमलके पापोंका प्याला भर चला है।

वह स्वयं शीघ्र ही फूटने वाला है। फिर तुम व्यर्थकी बदनामी क्यों लेते हो ?

घोंघा०—देखिए, यह विलायती वकीलोंकी बिल्टी है। यह भी उन्हींकी कृति है।

अनूप०—ओ हो ! बड़ी अच्छी चीज़ है। लाओ मुझे ही दो—तेरा सत्यानाश हो—आज ही फैसला हो जायगा। इधर या उधर। तेरा सत्यानाश हो—बस आज ही।

घोंघा०—कैसे फैसला कीजियेगा ?

अनूप०—सो शामको जान सकोगे। लाओ।

(बिल्टी लेकर एक ओरसे अनूपका तथा दूसरी ओरसे घोंघाका प्रस्थान।)

षष्ठ दृश्य

स्थान—हवड़ा स्टेशन, समय—तीसरा पहर।

(विलायती वस्त्रोंकी गाड़ीके साथ सेठ पापीमल ढोंगियाको घेर कर अनेक 'धरना' देने वाले असहयोगी खड़े हैं।)

१ असह०—सेठ जी, किस चीजकी गांठ है ?

२ असह०- गुलामीकी ?

३ असह०- -पापकी ?

४ असह०—स्वदेशके रक्तकी ?

५ असह०—विलायती वस्त्रोंकी ?

पापी०—हटो। रास्ता छोड़ो। यह सब स्वदेशी कपड़ा है।

(तेजीसे अनूपका प्रवेश)

अनूप०—बहुत ठीक। बिलकुल स्वदेशी है। एक दम खद्दर है। मगर बना है मैनचेष्टरका—तेरा सत्या-नाश हो—मैनचेस्टरका खद्दर पहननेको तो कांग्रेसने कहा ही है क्यों सेठ ?

पापी०—चुप रहो। (धरना-दाताओंसे) हट जाओ। नहीं तो पुलीसको बुलाता हूं।

१ असह०—यह बात। तब तो अभी बुलाइए।

२ असह०—(हाथ जोड़ कर) सेठजी इस अपवित्र वस्तुको शहरके भीतर न ले जाइए।

३ असह०—स्वदेशपर दया कीजिए।

४ असह०—महात्मा गांधीकी, कांग्रेसकी अवहेलना न कीजिए।

पापी०—(चिल्लाकर) पुलिस! पुलिस!!

(एक सारजराटके साथ चार लठ्ठधारी सिपाहियोंका प्रवेश)

सार०—क्या मामला है?

पापी०—(हाथ जोड़कर) हुजूर। देखिये, ये बद-माश मुझे मेरा अपना माल ले जाने नहीं दे रहे हैं।

सार०—(सिपाहियोंसे) इन्हें तितर-बितर कर दो। न हटें तो पीटो।

सिपा०—(असहयोगियोंसे) हटो। रास्ता छोड़ दो।

१ असह०—(सिपाहियोंकी उपेक्षा करके) सेठ, इस मालको नगरमें न ले जाओ।

२ असह०--स्वदेशको अपमानित न करो।

पापी०—(सारजण्टसे) देखिये हुजूर—अन्नदाता, गरीब-परवर, मां-बाप।

सार०—(सिपाहियोंसे लगाओ !—चार-चार लट्ठ लगाओ !!

(सिपाही और सारजण्ट असहयोगियोंपर डण्डे चलाते हैं और वे सबके सब 'महात्मा गांधीकी जय' 'भारत माताकी जय' इत्यादि कहते कहते मार खाकर बेदम हो जाते हैं। पापीमलका रास्ता साफ हो जाता है।)

सार०—(पापीमलसे) सेठ, अब अपनी गाड़ी ले जाओ।

पापी० (चुप)

सार०— गाड़ी ले जाओ सेठ।

पापी०—(चुप)

सार०—सेठ ! खड़े क्यों हो ? जाते क्यों नहीं ?

पापी०—हुजूर, एक बात बतलायेंगे ?

सार०—पूछो। जरूर बतलाऊँगा।

पापी०—आपकी नजरोंमें इस समय कौन बड़ा है, मैं, या ये बेहोश असहयोगी ?

सार०—अपनी गाड़ी ले जाओ बाबू। इस बातको पूछ कर क्या करोगे ?

पापी०—नहीं। बिना इसका उत्तर पाये मैं नहीं जाऊँगा।

सार०—अच्छा तो सुनो। हरएक सच्चे अंग्रेजकी नज़रमें असहयोगी देवता है। और तुम ?—नीच—अधम—घृणित—गुलाम—राक्षस सब कुछ हो। जाओ। सेठ, गाड़ी ले जाओ! अब मैं जाता हूं। चलो सिपाहियो!

(सिपाहियोंके साथ सारजण्टका प्रस्थान)

पापी०—सारजण्टने क्या कहा। मैं राक्षस, अधम, घृणित, गुलाम हूं। और नहीं तो क्या ? बहुत ठीक कहा। कम कहा है ? मैं उनसे भी कुछ ऊँचा हूं ? (असहयोगियोंकी ओर देखकर) इतने भाइयोंको कष्ट देनेवाला स्वदेशको छलने वाला और क्या हो सकता है ?

गाड़ीवान०—सेठ जी, गाड़ी कहाँ आयगी ?

पापी०—बताता हूं। ज़रा बैलोंको तो खोल दो।

गाड़ी०—क्यों ?

पापी०—पहले खोल दो, फिर बताता हूं।

(गाड़ीवान बैल खोले देता है)

पापी०—तुम्हारी गाड़ी कितनेकी है ?

गाड़ीवान०—सौ रुपयेकी सरकार।

पापी०—(एक सौ रुपयेका नोट देकर) लो। अब इस गाड़ीमें आग लगा दो।

गाड़ीवान०—ऐसा क्यों सेठ जी।

पापी०—'देश-द्रोह'-पापके प्रायश्चित्तका श्रीगणेश करनेके लिए। देर मत करो। लगा दो आग।

(गाड़ीवान विदेशी वस्त्र-पूर्ण गाड़ीमें आग लगा देता है। तब तक दो चार असहयोगी होशमें आ जाते हैं।)

१ असह०—सेठ जी, यह क्या हो रहा है ?

पापी०—पापका प्रायश्चित्त !

सब असह०—भारतमाताकी जय !

बेचारा प्रचारक

प्रहसनके पात्र

१, दन्तनिपोर—प्रचारक
२, अप्रियम् सत्यम्—मुहँफट लेखक
३, टकाधर्मम्—प्रकाशक-सम्पादक
४, सेठ शिवम् सुन्दरम्—कोई नेता, निपोरका मित्र
५, सुमुख—शिवं सुन्दरम्का बाल-सेवक।
६, चन्द्रमुखी—शिवं सुन्दरम्की युवती सेविका।

'सरला-सदन' की सरलाएँ, लेखक,
नौकर, दर्शक।

पहला नज़ारा

[प्रातः साढ़े आठ बजे। सेठ शिवसुन्दरम् अपने घरकी एक मारबल-मण्डित कोठरीमें चौकोर मारबली मेजके सामने बैठे हैं। मेजके दाहने-बाएँ दो कुर्सियाँ और हैं। रह-रह कर, उत्सुकतासे, अपनी बायीं कलाई पर सोनेकी सिकड़ीमें बँधी, प्लेटिनमकी बनी कलाई-घड़ी देख रहे हैं।

[वेश-विन्यासमें उनके जोधपुरी जोड़े, रेशमी मोजे,

चूड़ीदार पाजामा, लम्बा अचकन, अंग्रेज़ी कटे केश और बटरफ्लाई मूंछें हैं। कपड़े उनके खादीके हैं। मेज़ पर लिखनेका सामान, ताज़े अखबार और दो-चार मासिक पत्र हैं। एक ओर नौकर-पुकार विलायती घंटी भी दिखाई पड़ रही है।

(सेठ घंटी बजाते हैं। फिर-फिर घड़ी देखते हैं। बाल-चर सुमुखका प्रवेश)

शि० सु०...(मुस्कराकर) सु...

सुमुख—जी...

शि० सु०—सु...ज़रा बाहर देखो, कोई आया तो नहीं है।

सुमुख—(विनम्र) बहुत अच्छा। (गमनोद्यत)

शि० सु०—ज़रा ठहरो। सु...

सुमुख—जी...

(सेठ नीचा सर कर कोई मासिक पत्र उलटने लगते हैं। आंखके कोनोंसे सुमुखकी ओर देखते हैं। उनके देखनेमें कुछ वासना होती है, कुछ कामना ! उनके होंठ और मुस्कराहट यह भेद बताते हैं।)

शि० सु०—सु...

सुमुख—जी...

शि० सु०—ज़रा निकट आकर सुनो।

(सुमुख सकपकाता है, बढ़ता है, आँखें नीची करता है, खड़ा हो जाता है।)

शि० सु०—आओ; पास आओ!—इधर! यहां आकर खड़े हो।

सुमुख—(वहीं से) जी...

शि० सु०—(लघु-आवेगसे) अरे, आता क्यों नहीं? यहां आ यार!

सुमुख—(लघु-घबराहटसे) जी...मैं जाकर देखता आऊँ, बाहर कोई आया तो नहीं है।

शि० सु०—वह फिर करना। पहले मेरे पास आओ!—इधर। यहां आकर खड़े हो। अरे! फिर खड़ा है। मैं ही उठूं? मैं ही तेरी ओर झुकूं?

सुमुख—(पीछे हटता हुआ) जी...देखता आऊं?

शि० सु०—नहीं, नहीं, नहीं। उफ़रे छोकरे। मेरी

बात सुनता ही नहीं। सर चढ़ानेका यही नतीजा है। मुंह लगानेका यही खट्टा स्वाद है! ठहर मूर्ख!

(सेठ कुर्सीसे उठकर सुमुखकी ओर बढ़ते हैं। बालक सहम कर पीछे हटता है।)

शि० सु०—खबरदार जो पीछे हटे!

सुमुख—(और हटता हुआ) आप वहीं बैठें, मैं आता हूं।

शि० सु०—नहीं। तुम वहीं खड़े रहो, मैं तुम्हें पकड़ कर मेज़के पास ले चलूंगा।

सुमुख—नहीं, क्षमा कीजिये, वहीं बैठिये, मैं आता हूं।

शि० सु०—नहीं—नहीं। मैं तुम्हें पकड़कर मेज़के पास ले चलूंगा। ठहर, खड़ा रह।

(बालक इधरसे उधर दौड़ता है—कभी उदास, कभी चंचल, कभी भयभीत-सा। सेठ उत्तेजित भावसे उसे इधरसे उधर घेरकर पकड़ना चाहते हैं।)

सुमुख—(हाथ जोड़कर इशारेसे कहता है, मत पकड़िये।)

शि० सु०—(नाक फुलाकर, भ्रू-संकोच कर, इशारेसे कहता है—बस, सीधेसे गिरफ़्तार हो जाओ। इसीमें कल्याण है।)

(सुमुख भागकर मेज़के निकट जाता है, फिर इशारा करता है—न पकड़िये। सेठ उधर ही बढ़ते हैं। बालक दरवाज़ेकी ओर भागता है। सेठ उधर भी बढ़ते हैं। उनका अचकन मेज़के कोनेमें फंसता है। वह भड़भड़ा कर गिर पड़ता है। सेठ भी अचकचाकर गिरते हैं। उनके मुख पर पीड़ा और चोटके भाव भभकते हैं। बालक भी इस आकस्मिक घटनासे चकित और स्तब्ध हो जाता है। इस बार फ़ौरन संभल और उठकर सेठ उसकी दोनों भुजाएं अपनी मुट्ठीमें पकड़ लेते हैं।)

शि० सु०—(नाक फुलाकर) पाजी, नालायक़, बेईमान, अहसान फ़रामोश ! (उसकी आंखों पर आंखें गड़ा कर विविध आकृति बनाते हैं। वह छुड़ानेकी चेष्टा करता है। सेठ उसे कस रखना चाहते हैं। चन्द्रमुखीका प्रवेश।)

चन्द्र०—(प्रवेश करती हुई) कैसी भड़भड़ाहट ?

बिखरी मेज़की ओर देखकर) हैं...हैं...यह क्या... (सेठ और बालककी ओर निहार कर) अररर—ओ ोोो ! (भीषण आश्चर्य उसके मुंह पर । 'तुम्हारे यह करम !' उसकी आंखोंमें ।)

शि० सु०—(सुमुखको छोड़ देता है, चेहरेके भाव बिलकुल बदल देता है, चन्द्रमुखीको देखते ही !) यह बड़ा पाजी लौंडा है ।

चन्द्र०—(सन्दिग्ध गंभीरतासे) हूं...

शि० सु०—हूं...क्या ? इसीने मेज़ गिराई है ।

चन्द्र०—हूं...(वह मेज़की ओर बढ़ती है । उसे उठाकर सीधा करना चाहती है । सेठ बढ़कर उसकी सहायता, चोरों-सा मुंह बनाये, करते हैं ।)

चन्द्र०—(मेज़ सीधी कर सुमुखकी ओर क्रुद्ध कटाक्षसे देख कर ।) भाग यहांसे । ना-मर्द कहींका ।

(सुमुख चुपकेसे भागता है । चन्द्रमुखी ज़मीनपर बिखरी चीज़ोंको विकल भावसे देखती है ।)

चन्द्र०—(सेठकी ओर तिरछे देखकर) शर्म आनी चाहिये । (एक अख़बार उठाकर फटकारती है ।)

शि० सु०—यह बड़ा पाजी लौंडा है। ज़रूर उसे शर्म आनी चाहिये। वह मेरा नौकर है, फिर मेरी बात क्यों नहीं सुनता।

चन्द्र०—(अख़बार मेज़ पर रखती और सेठ पर कुढ़ती हुई।) यह डूब मरनेकी 'बात' है।

शि० सु०—मैंने भी कई दिन उसे समझाया, बताया, कि यह डूब मरनेकी बात है। मगर, वह पाजी न तो डूबता है और न मरता।

चन्द्र०—(ज़मीनमें बैठकर फैली हुई स्याहीकी ओर देखती है। दावात उठाकर काग़ज़से पोंछती है।) यही स्याही मुँहमें पोत लेनी चाहिये। घरमें ऐसे बुरे काम, बाहरमें पण्डित-ज्ञानी। तुम ब्याह क्यों नहीं कर लेते ?

शि० सु०—(चंद्रमुखीके सामने बैठकर खीस बना कर मासिक पत्रोंको बटोरता है।) मैं ? मैं अब ब्याह क्या करूं चंद्रमुखी। तुम्हें क्या मालूम नहीं कि हर सालके हर बारहवें महीने मेरी औरत मर जाती है।

चंद्र०—हटो, सामनेसे। मैं बटोर लूंगी। जाओ अपने उस 'पाजी' के पास। लड़ो उससे कुश्ती। आज

मेरा हिसाब साफ़ कर दो। मैं बाज़ आई इस नरकसे।

शि० सु०—(प्यारसे) चन्द्रा...

चन्द्रा—(तेजसे) चुप रहो। इस तरह मुझे न पुकारा करो। मुझे शर्म मालूम होती है। हटो यहांसे। कोई आ जायगा तो क्या समझेगा। हटो, हटो, नहीं तो भाग जाती हूं।

शि० सु०—(वहींसे प्यारसे) चं...चं...चन्द्रा...

चन्द्र०—(गमनोद्यता) तो तुम चंचनाओ, कहो तो तुम्हारे उस पाजीको भी भेज दूं। मैं यहां नहीं टिक सकती। मैं कोई बाजार...

शि० सु०—मैं कहता हूं भूल जाओ उस घटनाको...चन्। बिगड़ो मत इस बुरी तरहसे। बैठो।

चन्द्र०—(दरवाज़ेकी ओर उलटेपांव बढ़ती हुई) क्षमा कीजिये आप बड़े आदमी हैं। आपके लिये प्रत्येक कर्म शोभा है। मैं गरीब हूं, मेरे भूलने न भूलनेकी आप को क्या पर्वा। मैं आपको प्रणाम करती हूं। आप नेता हैं, उपदेशक हैं खचाखच-भरी सभाओंके! आप कुछ भी कर सकते हैं। (बढ़ती है।)

शि० सु०—जाना मत।

चन्द्र०—(भावसे) वाह !

शि० सु०—(वाहके प्रभावसे) आह ! आज सुबह से ही मेरा मन न जाने क्या चाहता है। जाना मत।

(चन्द्रमुखीकी ओर बढ़ते हैं।)

चन्द्र०—ना ना मेरी ओर न बढ़िये।

(और बढ़ती है)

शि० सु०—इधर आओ मेज़के पास, मेरे पास।

(और बढ़ते हैं।)

वह इधरसे उधर भागती है, लीलासे। सेठ उसका पीछा करते हैं, आवेशसे। वह एक ओर रुक कर इशारेसे कहती है—मुझे क्यों घेरते हो, छोकरेको पुकारो। सेठ हाथ छोड़ते हैं, मुंह बनाते हैं, रुकते हैं, प्रेम दिखाते हैं, बढ़ते हैं। वह भागती है।

वह मेजके पास जाती है। सेठ वहां जा धमकते हैं। वह भाग जाती है। सेठ फिर लपकते हैं। फिर वही अच-कन फंसता है मेजके कोनेसे, फिर भड़भड़ाहट, फिर पतन; मेजका, सेठका भी।

वह फिर आवेशसे उठते हैं, मुंह बनाते हैं। लपक कर चन्द्रमुखीकी दोनों भुजाएं कस कर पकड़ लेते हैं। ऐसे भाव बनाते हैं गोया उसको चूमना चाहते हैं।

(दन्तनिपोरका प्रवेश)

दन्तनिपोरजी आबनूस-काले हैं, उनका मुंह अफ्रीकियों-सा, चौड़ा, चिपटा, मोटे ओठों वाला। तनपर उनके कुरता, धोती, गांधी-टोपी है; और दाहने कन्धसे बायीं कमर तक लटकता हुआ थैला। पांव हैं उनके नंगे। वह दुबले हैं बीमार बंगालीकी तरह। वह सेठ, चन्द्रमुखी और मेजकी दुर्दशा एक ही दृष्टिमें देखकर पहले सन्देह-सने भाव बनाते हैं; फिर तुरन्तही सतर्क गोपन-भाव। वह खांसते हैं,—सेठको सावधान करनेके लिये।

दन्त०—नमस्कार।

शि० सु०—(फौरन चन्द्रमुखीको छोड़कर) आइये, पधारिये निपोरजी! (चन्द्रमुखीसे) देख, भूलना मत। आवश्यकता पड़ने पर तुझे ऐसा ही व्यवहार करना होगा। तब शत्रुओं से तेरी रक्षा हो सकेगी। जा, अब। मैं दूसरे काम करूं। (चन्द्रमुखीका प्रस्थान)

शि० सु०—(दन्तनिपोरसे) आपने क्या आशय निकाला इस दृश्यसे ?

दन्त०—(सरलतासे) टेबिल गिरा हुआ है। अखबार और मासिक पत्र बिखरे हुए हैं। स्याही फैली और दावात मैली है। आप उस स्त्रीको पकड़े खड़े थे। मुझे तो यह सब विचित्र भूल-भुलैया-सा भासता है।

शि० सु०—(हँसकर) हा हा हा हा !

दन्त०—(निपुर कर) क्यों ? आप हँसते क्यों हैं ?

शि० सु०—इसी लिये कि आप बहुत भोले सीधे निपोरजी हैं। आपने कुछ नहीं समझा।

दन्त०—सच है सेठजी, और जो सच है उसे स्वीकार कर लेनेकी मुझे शिक्षा मिली है। मैंने कुछ भी नहीं समझा।

शि० सु०—मैं वह काम कर रहा था जो महान आवश्यक है मेरे लिये, आपके लिये और मेरे-आपके पतित स्वदेशके लिये।

दन्त०—अच्छा !

शि० सु०—हां मैं अपनी दासीको क्रान्तिकी शिक्षा दे रहा था।

दन्त०—(मारे आश्चर्यके मुंह फैला देते हैं।)

शि० सु०—मैं उसे बता रहा था कि क्रान्ति होगी तो मेज़ उलट दी जायगी, दावात और कलम तीन-तेरह हो जायँगे। काला रंग लालके रक्तमें और लाल कालेकी कालिमामें लथपथ हो उठेंगे।

दन्त०—(भावोत्तेजित रूपसे) वाह वाह! आप आदर्श नेता हैं सेठ शिवसुन्दरजी। इसमें ज़रा भी मुबालगा नहीं।

शि० सु०—(मेजकी ओर बढ़ते हुए) यह देखिये चांद पर अभ्युदय आरूढ़ है और अभ्युदय पर गुरुघण्टाल। घण्टाल पर स्टेट्समैन चढ़ा दिखाई पड़ रहा है। क्रान्तिमें ऐसा ही होगा। मनुष्योंकी तो गणना ही क्या, अखबारी दुनियांमें भी उस महाप्रलयमें तूफान रहेगा। उसी तूफ़ानके लिये मैं अपने घर के एक-एक नौकर तक तैयार कर रहा हूं।

दन्त०—आप धन्य हैं। यह देश आप ऐसा रत्न पाकर चमक रहा है।

शि० सु०—उस दासीको—आपने अवश्य देखा होगा—मैं दोनों चंगुलमें पकड़े खड़ा था। साधारण दुनियांकी आंखें यदि वह दृश्य देखतीं तो उनमें घृणाका मिरचा परापरा उठता। वे लाल हो जातीं, जलने लगतीं मेरे विरुद्ध।

दन्त०—मगर आपतो खरा सोना हैं।

शि० सु०—अजी मैं उसे समझा रहा था कि क्रान्ति होनेपर विपक्षी तुझे पकड़ सकते हैं—इस तरह, (भुजाओंके पकड़नेका भाव) तुझे अपमानित कर सकते हैं—इस तरह, (चूमनेका भाव) मगर तू सतीकी तरह अकड़ी रहेगी—इस तरह।

(मेज उठाना चाहते हैं)

दन्त०—मैं भी आपकी सहायता करूं। (हाथ लगाकर मेज खड़ी करते हैं।)

शि० सु०—धन्यवाद! (दावात कलम उठाकर मेज पर यथास्थान रखते हैं।)

दन्त०—अजी इसमें धन्यवादकी कौनसी बात है। (घंटी उठाकर रखते हैं।)

शि० सु०—(अखबार समेटते हुए) क्रान्ति अवश्य होगी—होगी न ? आपकी क्या राय है ?

दन्त०—होगी तो ज़रूर। (एक कुर्सी पर बैठते हैं।)

शि० सु०—उस भावी क्रान्तिमें मैं तो स्वदेशकी ओर से लड़ूंगा। जिस तरहसे ज़रूरत होगी उस तरहसे लड़ूंगा।

दन्त०—आप वीर हैं—पार्थकी तरह।

शि० सु०—(दूसरी कुर्सी पर बैठते हुए) मगर उस अनोखे युगमें आप क्या करेंगे दन्तनिपोरजी ?

दन्त०—मैं ? मैं तो प्रोपागेंण्डिस्ट हूं। मैं योद्धा तो हूं, नहीं ही ही ही ही। यह देखिये (थैला दिखाते हैं) यही मेरा शस्त्रागार है। और यह देखिये (थैलेमेंसे कुछ परचे निकालकर) यही मेरे हथियार हैं। मैं ऐसे-वैसे परचोंको आपमें-उनमें बाटूंगा—वही मेरा वार होगा।

शि०सु०—अरे ! तो आप ताल ठोकर लड़ेंगे नहीं ?

दन्त०—ना भाई, मैं लड़ नहीं सकता। मेरा काम बस परचे बांटना और भड़काना है।

शि० सु०—और यदि विद्रोही या विपक्षी आप पर टूट पड़े? तब?

दन्त०—मैं भागूंगा।

शि० सु०— हा हा हा हा—ही ही ही ही—आप भागियेगा? सचमुच, आप भागियेगा? कैसे भागियेगा भाई निपोरजी?

दन्त०—(सरलतासे) जैसे सारी दुनियां भागती है वैसेही। सरपर पांव रखकर।

शि०सु०—अरे! सरपर पांव रखकर! कैसे मित्र; ज़रा भागकर दिखा दो।

दन्त०—अहँ! जब अवसर आवेगा, देख लीजियेगा।

शि० सु०—नहीं, अभी दिखा दो। (हाथ पकड़कर उठाते हैं) मैं समझे रहूं। भागना भी अपने पार्श्ववर्तियोंको सिखाये रहूं। ज़रा भागो। (दन्तनिपोरको पीछे घुमाकर धकेलता है।) ज़रा भागो भाई, हा हा हा हा!

दन्त०—(घबराकर) अजी, यह ज़्यादती। आज आप सावधान नहीं हैं क्या ?

शि० सु०—(आग्रहसे) अब तो आपको भागना ही होगा। मैं आजही यह देखना चाहता हूं कि क्रान्तिमें भागनेवाले कैसे भागेंगे।

दन्त०—अजी नहीं, सेठजी ! मज़ाक़ छोड़िये।

शि० सु०—भागना होगा। मेरी ख़ातिर।

दन्त०—तब मेरा नमस्कार लीजिये। मैं चला।

(दरवाज़ेकी ओर बढ़ते हैं।)

शि० सु०—यह तो होनेका नहीं ! (रास्ता रोक लेते हैं।)

दन्त०—याने ?

शि० सु०—भागिये। (हाथसे पीछे धकेलते हैं।)

दन्त०—हटिये, मुझे जानेदीजिये। (सेठके पंजेसे पंजा भिड़ाते हैं। दोनों एक दूसरेको धकेलते हैं।)

(सेठ कहते हैं—भागिये। भयभीत दन्तनिपोर कहते हैं—हटिये, जाने दीजिये। दोनो हाथा-बाही करते हुए सारे कमरेकी परिक्रमा करते हैं। मेज़के पास आते

है। निपोरकी पीठसे मेजमें धक्का लगता है। वह उलट जाती है, नीचे मेज़, फिर निपोरजी, फिर सेठ शिवं सुन्दर, हाँफते, लड़ते दिखाई पड़ते हैं।)

शि० सु०—भागिये—भागना होगा।

दल्ल०—हटिये, हटना होगा।

(प र दा)

दूसरा नज़ारा

(बरामदा है, जिसकी दाहिनी ओर दरवाज़ा है। दरवाज़ा खुलता है। प्रकाशक स्कांधर्मम्—लोंदेल, नाटे, चश्मुद्दीन,—बाहर आते हैं। मूंछें उनकी हिण्डनबर्गी हैं, मुंह उनका बड़ी जातिके नाटे पपीतेसा या सड़े-बड़े कद्दूसा है। सर पर उनके खादीकी बड़ी पगड़ी, तन पर खुले कालरका पीले रङ्गका मखमली कोट और पाँवमें वैसा जूता है जिसे काशी वाले 'अन्हराका पुल' कहते हैं। हाथमें उनके छोटा-मोटा डण्डा है। मुंहसे पानकी धारा बह रही है। माथे और मुख पर उनके कई झुर्रियाँ

गहरी-गहरी हैं, जिन्हें देखते ही कुछ अप्रियताका बोध होने लगता है।

(द्वारसे मुंह निकालते ही, बायीं ओर देख कर, वह आश्चर्याकृति बनाते हैं। भीतर सर घुसेड़ लेते हैं, जैसे कछुआ अक्सर करता है। फिर बाहर सर निकालकर उधर ही देखते हैं, प्रसन्नताके अतिरञ्जित भाव बनाते हैं, सावधानसे पाँव बाहर निकाल कर, स्वयं भी प्रकट होते हैं।)

टकी—(बायीं ओर देख और हाथ बढ़ाकर, स्वागत के भावमें) अस्सूआह !

(अप्रियंसत्यम्का बायीं ओरसे प्रवेश।)

[अप्रियंसत्यम्जी लुंगी लगाये हैं, मुसलमानी ढंगकी। उस पर ज़रा लंबा पञ्जाबी कुरता। बाल उनके बढ़े हैं, सरके—स्वामी विवेकानन्दकी तरह ; दाढ़ीके—मौलाना अब्दुलकलाम आज़ादकी तरह। लुंगी सुफ़ेद ज़मीन पर काले चारख़ानेकी, रेशमी ; और कुरता खाकी सर्जका है। पाँवमें उनके पेटेण्ट-चमड़ेका फुल-स्लीपर है।]

अप्रि०—वाह, वाह ! अपूर्व दर्शन हुए। इस समय आप घरमेंसे वैसे ही निकले जैसे कलकत्ताके चिड़िया-खाने वाले तालाबसे कभी-कभी दरियाई हाथी निकलता है।

टकां०—अजी सब आपकी कृपा है। आप तो वर्त्तमान हिन्दी कविताके 'प्रसाद-गुण' हो रहे हैं; जल्द दिखाई ही नहीं पड़ते। ज़रा आइये। पल भर विराजकर मुझे भी कृतार्थ कीजिये।

अप्रि०—मैं जल्दीमें हूं। ज़रूरी कामसे जा रहा हूं।

टकां०—कहां ? कहां ?

अप्रि०—दारू वालेका उत्साह बढ़ाने।

टकां०—हिश—आप भी अजीब आदमी हैं। इतने जोरसे बोलते हैं कि बहरा भी सुन ले।

अप्रि०—बहरा सुने या बे-बहरा, मुझे इसकी पर्वा नहीं। सत्यकी जानकारी सभीको होनी चाहिये।

टकां०—हा हा हा हा ! आप भी एक ही सत्यवादी हैं। आपके इन्हीं सत्योंको सुननेके लिये लोग आपको ढूढ़ा करते हैं। मनुष्य चाहे स्वयं ऐसे अप्रिय सत्य न

कह सके, मगर, दूसरोंको कहते सुनकर वह प्रसन्न अवश्य होता है। (नौकरको पुकारता है) ओरे, ओरे निरमलवा! ज़रा कुर्सी तो निकालना।

अप्रि०—अजी नहीं। व्यर्थका ढकोसला न कीजिये। मैं बैठूंगा नहीं। मेरे लिये दारूवालेसे गप हाँकना अधिक सत्यम् और शिवम् है, आपके इस मिथ्या प्रदर्शनसे। मैं चला।

टकां०—अजी नहीं भाई, ज़रा बैठिये। आप मिलते ही कहां हैं। आपसे आज कुछ व्यापारिक बातें करनी हैं। मैं अपने 'सत्यशोधक' के लिये एक सम्पादक ढूंढ़ रहा हूं।

(नौकर एक कुर्सी लाकर रखता है।)

अप्रि०—क्यों? क्यों? (बरामदेमें दाखिल हो जाते हैं।) 'सत्यशोधक' का सम्पादन तो आरम्भसे आप ही कर रहे हैं न? अब क्या ऊब गये?

टकां०—ऊबा नहीं, बल्कि जिम्मेदारी बढ़ गयी है। अब मैं किसी दूसरे योग्य हाथोंमें 'सत्यशोधक' को सौंप उसका 'संचालक' मात्र रहना चाहता हूं। 'शोधक' की उन्नतिके लिये अभी अनेक उद्योग आवश्यक हैं।

अप्रि०—जैसे...?

टक्कां० —जैसे 'सत्यशोधक-भवन' का निर्माण, 'सत्य-व्याख्यान-माला' की योजना, 'सत्य-प्रचार-बुलेटिन' आदिका प्रकाशन...आदि, आदि।

(नौकर दूसरी कुर्सी लाकर रखता है।)

अप्रि०—(एक कुर्सी पर बैठकर) शेखचिल्लीका यह कुनबा कैसे तैयार होगा ?

टक्कां०—(दूसरी कुर्सी पर बैठ कर) हा हा हा हा ! खूब कहा आपने। मेरे इस कुनबेके लिये पहले एक सम्पादक चाहिये। उसे चाहिये कि आधुनिक प्रचार कलाकी सहायतासे हमारा प्रकाशन चलाता और 'सत्य-शोधक' को धड़ाधड़ सम्पादता चला जाय। बाकी, चन्दा मांगनेका महान् कार्य, मैं स्वयं कर लूंगा। मगर, मेरा यह कुनबा बिना आप महानुभावोंकी सहायताके कैसे तैयार होगा।

अप्रि०—बचाइयेगा मुझे ; मैं 'महानुभाव' नहीं। बल्कि, मैं महानुभावोंके रोजगारसे दूर ही रहना सर्वसाधारणके लिये जरूरी समझता हूं।

टका०—क्यों? क्यों? ऐसी ही बातें आपकी विचित्र होती हैं। महानुभावतासे परहेज़!

अग्नि०—हां परहेज़—घोर परहेज़। जहां जबतक एक भी 'महानुभाव' जीता, खाता, खांसता और सांस लेता रहेगा तबतक मनुष्यताके प्राण संकटमें रहेंगे। जहां सभी नाशमान, जहां सभी मिथ्याके प्रदर्शन, भूलभुलैया नाटकके पात्र हैं—वहां कोई 'महानुभाव' कैसे हो सकता है।

टका०—(घोर आश्चर्यसे मुंह फैलाता है।)

अग्नि०—जहां सभी गलीकी धूलकी तरह हैं, जिनकी स्थिति अनजानोंके पैरोंकी ठोकरों पर स्थिर है—वहां कोई महानुभाव कैसा। वह मूर्ख है, जो अपने-अपने जीसे किसी देहीको महानुभाव समझता है।

टका०—इस तरह...आधीसे अधिक दुनिया मूर्ख हो जायगी।

अग्नि०—है—है—आजसे नहीं दुनिया उसी दिनसे मूर्ख है जिस दिनसे उसने महानुभाव शब्दका पतित निर्माण किया है।

टकां०—मेरे मतसे उसी मतको मानना चाहिये जो आधीसे अधिक दुनियांमें प्रचलित हो।

अप्रि०—मानिये, मगर, मुझे फुर्सत दीजिये। मैं दारूवालेकी दूकान पर जाकर महानुभावताकी बोतल खाली करता आऊँ।

टकां०—आप भी मेरी मदद कीजिये।

अप्रि०—किस तरह...?

टकां०—'सत्यशोधक' को सम्पादकर या—मेरे प्रकाशनके लिये पुस्तकें लिखकर।

अप्रि०—आप लिखाई क्या देते हैं?

टकां०—बहुत कुछ देता हूं। हिन्दीके सभी प्रकाशकोंसे अधिक देता हूं।

अप्रि०—जैसे,...?

टकां०—जैसे, लेखकको लिखनेके वक्त उत्साह देता हूं। लिख जानेपर उसकी कमज़ोरियां सुधार देता हूं। सुधर जानेपर प्रेसमें देता हूं, छाप देता हूं, बेच देता हूं। आप ही बतावें, इससे ज़्यादा कोई क्या दे सकता है।

अप्रि०—और 'सत्यशोधक'—सम्पादकको आप क्या देंगे ?

टकां०—उस महानुभावको—हा हा हा हा !—उसको मैं पहले कुर्सी दूंगा, फिर कागज़, क़लम, दावात दूंगा। कंपोजिटरकी 'स्टिक' उसके बाएं हाथमें दूंगा, मैशीनकी हैंडिल दाहने हाथमें। 'सत्यशोधक' का पहला प्रूफ़ उसे दूंगा, दूसरा उसे दूंगा और आर्डर प्रूफ़ भी···ईश्वरकी शपथ !—उसीको उदारतापूर्वक दे दूंगा।

अप्रि०—(व्यंग्यसे) धन्य है आपकी उदारता !

टकां०—धन्य तो है ही। बहुतसे, और बड़े-बड़े, सम्पादक एक-एक प्रूफ़के लिये तरस कर रह जाते हैं और उन्हें नहीं मिलता। यहां मैं सब देनेको तैयार हूं।

अप्रि०—प्रसन्नताकी बात है कि आप-से सर्वस्वदानी प्रकाशक माता हिन्दीको मिले हैं। मगर मैं आपको कुछ भी नहीं दे सकता। गाली भी नहीं। आप चाहें तो मुझे आज्ञा दे दें—दारूवाला मेरे रुपयोंके इन्तज़ारमें वैसे ही होगा जैसे आप चन्देके रुपयोंकी ताकमें हैं।

टकां०—मैं समझता हूं, आप मुझे कुछ भी न देंगे।

बेचारा प्रचारक

ठहरिये मैं भी उधर ही चलता हूं (पुकारते हैं।) ओरे, ओरे निरमलवा ! कुर्सियां उठा ले जा यहांसे।

(दोनोंका प्रस्थान)

—o—

तीसरा नज़ारा

[समय तीसरा पहर। दन्तनिपोरजी तथा एक नवयुवक लेखक एक ओरसे और दो नवयुवक दूसरी ओरसे सड़क पर आ मिलते हैं। दूसरी ओर से आनेवाले दन्तनिपोर का अभिवादन करते हैं।

१ लेखक—नमस्ते, महाशय !

२ लेखक—नमस्ते निपोरजी !

दन्त०—(लघुरोप)—ठहरिये आपकी यह अभिवादन-प्रणाली वर्तमान युग के लिये अशिवम्, असुन्दरम् है।

१ लेखक—क्यों महाराज ?

२ लेखक—क्यों प्रभो ?

दन्त०—इस लिये कि नमस्तेसे आर्यसमाजकी बू आती है। इस बूसे मुसलमान और सनातनी नफ़रत करते हैं। अतः नमस्ते की प्रणाली ताज़ीरात हिन्दकी १५३ अ० धारामें आती है।

१ लेखक—(साश्चर्य) आह! आप तो बहुत बड़े कानूनी मालूम पड़ते हैं।

२ लेखक—तो महोदय वह कौन-सा नमस्कार है जो ताज़ीरात हिन्दकी किसी न किसी धारासे दूषित न हो?

दन्त०—वह है हमारा राष्ट्रीय 'बन्दे—!' या बन्दे मातरम्।

१ लेखक—बन्दे मातरम् से भी एक विशेष राजनीतिक विचारकी बू आती है।

२ लेखक०—इससे गर्म अंग्रेज और नर्म भारतीय भय खाते हैं। मुमकिन है, यह प्रणाम-प्रणाली ताज़ीरात हिन्दकी १२४ अ० धारामें धँस जाय।

दन्त०—जो हो, पर मेरे मतसे और देशके विख्यात वक्ता और नेता सेठ शिवंसुन्दरम्‌के मतसे यह प्रणाली अपवित्र, अग्रहणीय और असत्य है।

१ लेखक—आप केवल अपना मत कहिये तो ठीक है। मैं तो सेठ शिवंसुन्दरम्‌को किसी विषयका व्यवस्थापक नहीं मानता।

दन्त०—क्यों, क्यों ? सेठजीको देशका बड़ासे बड़ा आदमी आदर्श मानता है।

१ लेखक—उनकी थैलियां होंगी आदर्श, पड़ नजरमें; मगर उनमें चरित्रबल नहीं है। आपने अप्रियं-सत्यम्‌जीकी वह कहानी नहीं पढ़ी जिसमें उन्होंने उस बाल-व्यभिचारका वर्णन किया है ? बहुतोंका कहना है, वह सेठ शिवंसुन्दरम्‌का चरित्र-वर्णन है।

दन्त०—(आवेशसे) नाश हो इस अप्रियंसत्यंका। मुझे प्रियंसत्यम् शिरोधार्य है और जरूरत पड़े तो अप्रियं असत्यम् भी; मगर, अप्रियंसत्यम्‌का मैं कट्टर विरोधी हूं।

२ लेखक०—क्यों, क्यों ? सत्यका स्वागत होना चाहिये। वह प्रियं हो वा अप्रियं।

दन्त०—कदापि नहीं। सेठ शिवंसुन्दरम्‌का कथन है कि अप्रियंसत्यम्‌का साहित्य और उसका प्रचार मनुष्य मनुष्यता, सबके लिये अमंगलकारी है।

२ लेखक०—वह तो ऐसा ही कहेंगे। क्योंकि अप्रियंजी उनकी और उनके दलकी कलई उधेड़ दे रहे हैं।

दन्त०—तुम न बोलो। इन्हीं लोगोंको इस विषयमें बोलने दो। तुम उतने जिम्मेदार लेखक नहीं जितने ये लोग हैं।

१ लेखक०—आप हमें जिम्मेदार मानते हैं एतदर्थ अनेक साधुवाद।

दन्त०—ठहरिये। मैं साधुवादका विरोधी हूं, निन्दक हूं। साधुवादसे इस देशका भयानक नुकसान हुआ है। साधुवाद असत्यम् अशिवम्, और असुन्दरम् है, ऐसा सेठ शिवंसुन्दरम्जीका कहना है। मैं उनकी एक एक बात मानता हूं, क्योंकि उन्हें देशके बड़े बड़े व्यक्ति पूज्य लिखते हैं, मानते हैं।

१ लेखक—मगर अप्रियंसत्यम्जीके मतसे तो वह घोरदुराचारी प्राणी हैं। एक कहानीमें उन्हींका भण्डा-फोड़ करते हुए उन्होंने दिखाया है कि वह कहने भरके लिये अविवाहित हैं, फिलहाल। नहीं तो लड़के उनके खेले, मजदूरिनें उनकी खेली।

दन्त०—नाश हो इस अप्रियंसत्यमूका। इसके साहित्यसे देश उजड़ जायगा।

२ लेखक—सचमुच ?

दन्त०—हां हां, मेरी बात गांठ बांध लो। यदि अप्रियंसत्यमूके साहित्य और तत्त्वोंका प्रचार न रुका तो देश, देशके युवक, देशकी युवतियां, देशका भूत, भविष्य, वर्तमान, देशके राधाकृष्ण, कंस, देशके रामलक्ष्मण, दशरथ, देशके मिरचे, प्याज, पपीते, सब नष्ट हो जायंगे। यही शिवंसुन्दरमूका भी कथन है और उनके कथनकी कहां कद्र नहीं है।

१ लेखक—उनकी कद्र नहीं है तो श्री अप्रियंसत्यमूजीके हृदयमें। वह कहते हैं, देशके बड़े बड़े घृणित रुपयों के लिये शिवंसुन्दरमूका आदर करते हैं। और अगर रुपये ही आदरणीय हैं तो अप्रियंजी एक सौ एक रुपये वाली वेश्याएं या चकला-चालक ऐसे पेश कर सकते हैं जो अपने व्यापार के लिये बड़े बड़ोंकी आर्थिक सेवा करनेको तैयार हैं।

दन्त०—बस करिये, अप्रियंसत्यमूकी अधिक चर्चा

मेरे सामने न कीजिये। मैं अभी श्रीमान पूज्यपादेषु टकांधर्मम्के यहां जा रहा हूं। वहां जरूरी और गम्भीर बातें करनी हैं। इस चर्चासे मेरा दिमाग न बिगाड़िये।

३ लेखक०---कौन-सी ज़रूरी बातें ?

दन्त०---मैं 'सत्यशोधक' का सम्पादक बनाना चाहता हूं। यह सलाह मुझे सेठ सुन्दरम्ने दी है। उसी पत्रको अपना कर मैं देशको स्वराज दिला दूंगा। साहित्यको सत्यम् शिवंसुन्दरम्की झांकी दिखा दूंगा, अंग्रेजोंके छक्के छुड़ा दूंगा ईसाइयोंकी अक्ल खराद दूंगा, मुसलमानोंकी खोपड़ी सुधार दूंगा और अप्रियंसत्यम्के होश छिन्न करके छोड़ूंगा।

१ लेखक (तानेसे) ओह! ऐसी बड़ी बड़ी प्रतिज्ञाएं।

दन्त०---हां जी हां। तुम मुझे समझते क्या हो। इस विषयमें लेखोंसे और थैलियोंसे सेठ शिवंसुन्दरम् मेरी सहायता करेंगे। और उस सहायतासे मैं हिन्दीके उन सभी लेखकोंको मदद दूंगा जो मेरे खड़े झण्डेको थामकर खड़े होंगे। फिर चाहे वे पुल्लिङ्ग हों, स्त्रीलिङ्ग या नपुंसक।

मैं लिङ्गोंकी अपने सिद्धान्तके आगे कोई पर्वा नहीं करता।

(दोनों लेखक एक ओर जाते हैं और दन्तनिपोर तथा उनका साथी—तीसरा लेखक—दूसरी ओर।)

चौथा नज़ारा

['सत्य-शोधक' का सम्पादकीय प्रकोष्ठ। समय सन्ध्या साढ़े सात बजे। वह आधुनिक मेज़ जिसे 'सेक्रेट्रियट' कहते हैं, बीच कमरेमें शोभित है। उसके तीन ओर कुर्सियाँ हैं। कोनेमें आराम कुर्सी दिखाई पड़ रही है। मेज़ पर लिखने-पढ़नेके आफ़िसी-सामान सजे हैं—कागज़दान, पैड, फ़ाइलें, ब्लाटर, सूखी दावात, तीन-तीन, क़लम टेलीफोन-यन्त्र। एक ओर बिजलीका सुन्दर प्रकाश जल रहा है। आराम कुर्सीकी बग़लमें एक बड़ी आलमारी है जिसमें मोटी-मोटी सजिल्द पुस्तकें हैं। सामनेकी दीवारपर बड़ी घड़ी खटखटा रही है।

[सेठ शिवं सुन्दरम् और टकाँधमंम् बातें करते हुए प्रवेश करते हैं।]

शि० सु०—सीधा आदमी है।

टकां०—चेहरे हीसे बेचारा सीधा लगता है।

शि० सु०—खूब परिश्रमी है।

टकां०—सुना है, युगोंसे बेकार भी है।

शिवं०—सीधा आदमी है। बस मैं तो यही देखता हूं। उसको जो जैसा समझावे, उसे वैसा ही समझ लेता है।

टकां०—यह बहुत बड़ा गुण है।

शिवं०—तभी चारों ओर उसका मान भी तो है। उसके संतनिपोर ही पर अनेक अच्छे दार्शनिक लुब्ध हो जाते हैं। सीधेको कौन नहीं पसन्द करता।

टकां०—अस्तु......मतलब पर आइये।

शिवं०—फँसाइये। (एक कुर्सीपर आसीन)

टकां०—किस अड्डे पर ? (दूसरीपर आसीन)

शिवं०—पहले चारा फेंकिये, फँसाइये, परचाइये, परकाट लीजिये। फिर तो अड्डेका सवाल ही नहीं रह जायगा। जिसपर चाहियेगा—फुदकाइयेगा।

टकाँ०—तो 'सत्यशोधक' की सम्पादकी पहले सौंपूं उसे ? उसकी चारों ओर घुस-पैठ है। पत्र खूब प्रच-लित होगा।

(नौकरका प्रवेश)

टकाँ०—क्या है ?

नौकर—कोई मिलने आया है।

शिवं०—आदमी लंबा है ?

नौकर—हाँ हुजूर।

टकाँ०—काला है ?

नौकर—जी हाँ, सरकार।

शिवं०—नाक उसकी लम्बी है ? गरुड़की तरह ?

नौकर—है तो शायद ऐसी ही।

टकाँ०—बेवकूफ कहींका। जाकर मज़ेमें देख आ। नाक उसकी गरुड़-सी है, या नहीं ?

(नौकर सभीत जाता है)

शिवं०—वही होगा।

टकाँ०—वही होगा, तो उसकी नाक ज़रूर लम्बी होगी। उसकी देहमें वह नाक वैसेही मुख्य है; जैसे,

काशीमें 'माधोरावका धौरहरा' या कलकत्तामें वह बड़ा जैसे 'मानो मेण्ट' ।

(नौकरका प्रवेश)

शिवं०—ठीक वक्तसे आये ।

एकों०—(उठकर स्वागत करते हुए) आइये। बन्दे० —।

शिवं०— (बैठेही बैठे) पधारिये। बन्दे०—।

कुन्त०—(घोर दंतनिपोरई-पूर्वक) हे हे हे हे... बन्दे०—...हीं हीं हीं हीं बन्दे ! और सब...?

कुन्त०—सब आपकी कृपा है। भूमिका छोड़ हमें तुरंत विषय पर आना चाहिये। हमने और सेठ शिवं सुन्दरंजीने साझेमें 'सत्य-शोधक-समाज' की स्थापनाका निश्चय कर लिया है ।

कुन्त—आपही लोग—हीं हीं हीं हीं—देशके मशालची हैं। आपहीसे सत्यका प्रकाश फैलेगा। बाप क़सम, दादा क़सम, इल्म क़सम ।

शिवं०—अभी सब आप बड़ों और विवेकियोंकी कृपा है। इसमें क़समखानेकी क्या बात है।

दन्त०—नहीं, जो सत्य है उसके लिये क़सम क्या, लात तक खायी जा सकती है।

टकां०—आप धन्य हैं। आपही 'सत्य-शोधक' की लम्बी लगाम हथिया सकते हैं। आजसे आप उसके सम्पादक।

शिवं०—(बनकर) शुभम् , शुभम् !

दन्त०—(दांत निकालकर, उठकर, झुककर, प्रणाम)

टकां०—अब आप 'सत्य-शोधक' को सम्पादिये और 'सत्य-शोधक-समाज' के लिये बुलेटिन निकालिये। जो-जो आपके परिचित मित्र हों सबकी सहायता लीजिये।

दन्त०—ईश्वरकी दयासे सब होगा।

टकां०—साथही, 'सत्य-व्याख्यान माला' का प्रबन्ध कीजिये। लोगोंको बटोरकर ख़ुद उपदेशिये और अच्छे-अच्छे उपदेशकोंको भावका जुलाब देकर, अपने क्षेत्रमें एकत्र कीजिये।

दन्त०—ईश्वरकी दयासे सब होगा।

शिवं०—'सरला-सदन' के लिये भी 'सत्य-शोधक' में

आन्दोलन कीजिये। शीघ्रही, हम उसका उद्घाटन करने वाले हैं

दन्त०—(सजग होकर) 'सरला-सदन' क्या? उसमें क्या होगा।

टका०—होगा क्या। बेचारी भूली, भटकी, अनाथ, अज्ञात-यौवना अबलाओं और अक्षतयोनि विधवाओंको उसमें आश्रय दिया जायगा।

दन्त०—वाह, वाह! यह तो आपकी स्कीम परम-लोकोपकारिणी है। अबलाओंके लिये तो मैं इतना लिख सकता हूँ, कि दावात सूख जाय। आह, मैं बोल सकता हूँ, कि गला बैठ जाय। आह, मैं ऐसी दर्जनों बहनोंको जानता हूं, जो बिना आश्रयके, विजातियों और विधर्मियों तकके हाथों उस चीज़का सौदा करनेको तैयार हैं जिसके स्मरण-मात्रसे मेरी नाड़ी सुन्न हो जाती है।

शिवं०—अच्छा! आप ऐसी दर्जनों बहनोंको जानते हैं?

टका०—क्या वे सभी युवती हैं?

दन्त०—हां, महोदय! वे युवतियां

शिवं०—तो आप अभी उन्हें बुलालें। मैंने 'सरला-सदन' के लिये किसी हाल एक मकान किराये पर ठीक कर रखा है। और जब तक काफ़ी चन्दा नहीं हो जाता तब तक आनेवाली बहनोंका सादर स्वागत करनेके लिये स्वयं मैं भुजा पसारकर, छाती तान कर, खड़ा हूं।

दन्त०—आप धन्य हैं। मैं यथा सम्भव शीघ्रही उन्हें 'सदन' में बुलाने का प्रबन्ध करूँगा।

टकां०—दो-चार अबलाओंको मैं भी जानता हूं। उन्हें मैं बुलालूँ, अपनीको आप, और बस चैत्र मासके अन्तमें 'सरला-सदन' का उद्घाटन-स्मारक किया जाय।

शिवं—बड़ेसे बड़े नेतासे 'सदन' का परदा उठवा देनेका भार मैं लेता हूं।

दन्त०—बड़ेसे बड़े व्याख्याता, लेखक और सम्पादकको जुटा देनेका ज़िम्मा मेरा।

टकां—और 'सरला-सदन' के आर्थिक, मानसिक, कायिक, दाम्पत्तिक, साम्पत्तिक, सामाजिक, राजनैतिक लाभों पर बड़ासे बड़ा प्रमाण मैं पेश करूँगा।

दन्त०—अच्छी बात है।

शिवं---भगवान हमें 'सत्यशोधक-समाज' स्थापनमें सफलता दे !

सब०---एवमस्तु !

टका---(सबके चुप हो जाने पर) आमीन !

(प र दा)

पांचवां नज़ारा

[दोपहर। दोतला मकान। ऊपर खिड़कियां नीचे दरवाज़ा। दरवाज़े पर लेटर-बाक्स टँगा है जिसपर लिखा है "श्रीअप्रियं सत्यम्"।]

(एक ओरसे चादरमें छिपी चन्द्रमुखी और कुरता-धोती पहने नङ्गा सर, नङ्गा पांव सुमुखका सतक भावसे प्रवेश)

सुमुख—(धीरेसे) इसी ओर बताया है न ? हाँ, वह—लेटर बाक्स दिखाई पड़ा। यही है न ?

चन्द्र०—मालूम तो वैसा ही पड़ता है। हाँ, देखो; दोतला मकान—ऊपर दो खिड़कियां। यही है।

सुमुख—अब ?

चंद्र०—पुकार !

सुमुख—तूही पुकार।

चंद्र०—अरे हट ! ऐसा डरूं। पुकारनेमें क्या डर है।

सुमुख—तो पुकारूँ ?

चंद्र०—नहीं, दरवाज़े पर खटखटा। सेठके यहां सब

देखता है फिर भी समझता नहीं। अब पुकारा नहीं जाता। खटखटाया जाता है।

(सुमुख खटखटाता है। अप्रियंसत्यम् दरवाज़ा खोलकर झाँकते हैं।)

अप्रि०— (द्वार खोलतेही) कौन है ? (सुमुख और चन्द्रमुखीको देखकर) अरे... तुम कौन...?

चन्द्र०— (धीरेसे) भीतर चलिये तो सब कहूं।

अप्रि०--मगर, इस घरमें मुझे छोड़ और कोई नहीं। तुम चलोगी ?

चन्द्र०—हाँ, हाँ—चलिये।

अप्रि०—तुम जानती हो, इस मकानका मालिक कौन है या घर भूल गयी हो ?

चन्द्र०—मैं मज़ेमें आपको जानती हूं। मैं आपकी तस्वीर देखकर, आपके कुछ लेख सुनकर आयी हूं।

अप्रि०—भला ! (आश्चर्याकृति) तुम पढ़ी-लिखी हो ?

चन्द्र०—तस्वीर देखनेके लिये पढ़ने लिखनेकी कोई ज़रूरत नहीं और आपके लेख मैंने सेठके मुनीमसे सुने हैं।

अप्रि०—कौन सेठ ?

सुमुख—सरकार शिवंसुन्दरम्।

अप्रि०—(घोर आश्चर्य) आयं ! (लड़केका मुहं गौरसे देखते हैं, स्त्रीका भी) ठीक है। तुम उनके कौन हो ?

चन्द्र०—यह नौकर, मैं नौकरानी।

सुमुख०—मगर अब तो हम उनके कोई नहीं।

अप्रि०—क्यों ?

चन्द्र०—तीन दिन हुए हम दोनोंने उनकी नौकरी छोड़ दी।

अप्रि० क्यों—क्यों ?

चन्द्र०—भीतर चलिये तो सब बताऊँ। यहां, सड़क पर, कहने लायक़ बातें नहीं हैं। कोई आ भी रहा है।

अप्रि०—आने दो। मेरे यहां किसीका भी डर नहीं। भगवानका भी नहीं। चली आओ।

(अप्रिय सत्यम् रास्ता देता है। पहले चन्द्रमुखी फिर सुमुख घुस जाते हैं। दरवाज़ा बन्द हो जाता है।)

[एक ओरसे पोस्टर चिपकाने वाला सीढ़ी और

लेईकी बालटी लिये आता है। चारों ओर देखता है। सीढ़ी लगाकर पोस्टर साटता है।)

स्त्रीउद्धार ! नारीपुकार ! अबलोद्धार !

"सरला-सदन"

का

प्रथम उद्घाटन समारोह

टालीगंजके बालविहार भवनमें देशपूज्य सरलानन्द सरस्वती द्वारा कल होगा।

पधारिये ! पधारिये ! पधारिये !

निवेदक

मंत्री, कोषाध्यक्ष, प्रचारक।
सरला-सदन

सेठ मिर्च खन्दकम्
श्री रकांघमम्
श्री कुन्तनिपोरजी

(परदा)

छठाँ नज़्ज़ारा

[समय प्रातःकाल आठ बजे। सामने चँदोआ तना है, सभापतिका आसन तख्तपर बना है, कुर्सियाँ सजी हैं। यहीं 'सरला-सदन' उद्घाटन समारोह होगा। दाहिनी ओर एक ऊँचा मकान दिखाई पड़ रहा है— चौखंडा। निचले खण्डमें मेहराबदार फाटक है जिसपर ऊपर कईंस 'स्वागतम्' लिखा है। उसके नीचे 'सरला-सदन' का साइनबोर्ड है। फाटकके दोनों ओर बरामदे हैं।]

[बायीं ओरसे दो-तीन लौंडे-लेखकोंके साथ दन्त-निपोर-जीका प्रवेश।]

दंत० (लेखकोंसे) मेरे पत्रका प्रचार दिनमें मक्खियोंकी तरह और रातमें मच्छड़ोंकी तरह बढ़ रहा है। यद्यपि, सच कहता हूं, मुझे जरा भी सम्पादकीय ज्ञान नहीं।

१ लेखक—हो गयी होगी ग्राहक-संख्या दस हजार ?

दंत—हुंह! बीस हजार। बल्कि, पचीस या तीस हजार ग्राहक हैं मेरे पत्रके।

२ लेखक—आपकी सहृदयताकी आह है, हिन्दी जगत पर।

३ लेखक—फिर भी, यह संख्या इस युगमें आदर्श है। 'सत्य-प्रेस' तो केवल 'सत्यशोधक' कोही छापनेमें महीना खत्म कर देता होगा।

दंत०—नहीं, ऐसी बात नहीं है। 'सत्यशोधक' की प्रतियां तो केवल दो सौ पचीस छपती हैं। मगर, उसे पढ़ते हैं पचीस-तीस हजार आदमी।

१ लेखक—अब आपने ठीक कहा। यही अप्रियंसत्यमजी भी आपके पत्रके बारेमें कह रहे थे। उनके मत सेतो इतने ग्राहक भी आपके नहीं। वह कहते थे, ग्राहक केवल पचीस हैं, दो सौ प्रतियां मुफ्त बांटी जाती हैं।

दंत०—चुप भी रहो। उसका नाम न लो। ऐसी-ऐसी आलोचाएं मैंने छापी हैं उसकी कृतियोंकी कि बच्चूको पन्द्रहो भुवन नजर आते होंगे।

२ लेखक—पन्द्रहो भुवन! यह तो नयी बात सुनी।

३ लेखक--हाँ, शास्त्रोक्त तो भुवन चौदहही हैं।

दंत०---मगर, अब एक भुवन बढ़ गया है जिस की सबको खबर नहीं।

१ लेखक—वह कौन भुवन है, महोदय ?

दंत—यही ; हमारे 'सत्य-शोधक समाज' का 'सरला-सदन,' जो चलता जा रहा है गत तीन महीनोंसे ; मगर, जिसका विधिवत् उद्‌घाटन-संस्कार आज होगा।

२ लेखक--सुना है, इस उद्घाटन यज्ञको विध्वंस करनेके लिये आज अप्रियंसत्यम् जी सदल बल सभामें पधारेंगे।

दंत०--अरे चलो ! वह क्या आवेगा। यह आदर्श संस्था है। मैंने स्वयं नौ लड़कियाँ इसमें जुटाई हैं। सेठ शिवंसुन्दरम् और टकांधर्ममूके इस उद्योगकी प्रशंसा विलायत तकके पत्रोंने, खुले गलेसे, की है।

२ लेखक--सुना है, यहांके अनेक धनी, मानी ; युवक, अधेड़--प्रातः आठ बजेसे आरम्भ कर रात तीन बजे तक—'सरला-सदन' में जोड़ियों पर, मोटरों पर, आते हैं और 'सत्यशोधक समाज' का प्रयत्न देख कर ठगे-से रह जाते हैं।

दंत० -- इतनाही नहीं,। तोड़ेके तोड़े रुपये वे 'सदन' सहायतार्थ दे जाते हैं।

३ लेखक---मगर, वे लोग तीन बजे राततक क्या करते हैं ?

दंत०---करते क्या हैं, अबलाओंके मुँहसे उनकी करुण कहानी सुनते हैं, उनके गलेसे गला मिलाकर भारतके दुर्भाग्यपर रोते हैं

१ लेखक---गलेसे गला मिलाकर ? यही तो अप्रियं सत्यम्‌जी कहते थे। इसीमें वह अपवित्रता और असत्यकी माया बताते थे।

दंत०---वह झूठा है। सेठ शिवंसुन्दरम् और पूज्य-पाद टकाधर्मम्‌के प्रबन्धमें असत्यता और अपवित्रता होही नहीं सकती। मैं आप क़सम खाकर कह सकता हूं।

२ लेखक---(सामने बरामदेकी ओर दिखाकर) देखिये स्त्रियोंके एक दलके साथ सेठ शिवंसुन्दरम् उस बरामदेमें आये।

(सचमुच बरामदेमें औरतोंके बीचमें सेठ दिखाई पड़ते हैं।)

३ लेखक---उधर देखिये! दूसरे बरामदेमें आधा

दर्जन बालाओंके साथ श्रीमान् टकाधर्मजी दिखाई पड़ रहे हैं।

१ लेखक—उनके बीचमें टकाजी ऐसे शोभते हैं, जैसे, गुलाबके गुलदस्तेमें कुकुरमुत्ता।

सब०—हा हा हा हा! बहुत ठीक।

२ लेखक—वह! शिवसुन्दरमजी उस नव-यौवनाकी भुजामें भुजा डाल कर इधरसे उधर घूम रहे हैं। यह क्या है?

३ लेखक—(व्यंगसे) अबलोद्धार।

संत०. अजी नहीं। सामाजिक सेवकों पर ऐसे व्यंग्य न करो। सेठजी उन्हें यह पता रहे होंगे कि, वे कैसे अपनी सखीकी भुजामें भुजा भिड़ा कर सभामें क़ायदेसे आवेंगी।

१ लेखक—उधर देखिये। वह टकाधर्मजी क्या कर रहे हैं। उस छोकरीको हृदयसे लगाये खड़े हैं।

संत०—ठीक तो है। वह उसे बताते होंगे कि समाज के दुखियोंको ज़रूरत पड़ने पर किस तरह छातीसे

लगाया जाता है। 'सरला-सदन' की इन्हीं विशेषताओं पर तो यहांके धनी-मानी मुग्ध हैं!

३ लेखक —और भी देखिये। सेठजी उस युवतीको गोदमें उठाकर एक ओर भाग रहे हैं। वाह, वाह!

दं'स० — वह उसे सिखाते होंगे कि आवश्यकता पड़ने पर एक बहन अपनी दूसरी दुर्बल बहनको गोदमें उठाकर, सुरक्षित स्थानकी ओर, कैसे दौड़े।

(बाहर बाजा सुनाई पड़ता है।)

दंस० — सावधान! सभापतिजी आ रहे हैं।

[सेठ शिवसुंदरम् और ढकांधर्ममूजी अपने-अपने अबला-दलके साथ उधर ही आते हैं जिधर ये लोग बातें करते हैं। बांयी ओरसे सभापति सरलानंदजी आते हैं — लंबे, मोटे-तगड़े, सुफ़ेद लुंगी; काषाय-खद्दरी, झोलदार कुरता; चश्मा, मुण्डित शिर, हाथमें डण्डा। युवतियां उन्हें माला पहनाती हैं। वे हाथ उठाकर आसीस देते हुए मंचकी ओर बढ़ते हैं। उनके पीछे कई सौ दर्शक आते हैं, सब आसीन होते हैं। 'सरला-सदन' की युवतियां मङ्गल गान गाती हैं —]

गान

पार लगाओ, पार लगाओ
भारत-बेड़ा पार लगाओ!
हम अबलाएँ, हैं वे गाएँ
पतितोंसे जो मारी जाएँ
सहृदय जिनकी खबर न पाएँ
सब कलपाएँ—हमें सताएँ
हे दयालु! हमको अपनाओ!
भारत बेड़ा पार लगाओ!

नेपथ्यमें—(कोलाहल) ठहरो! रुको!! बंद करो इस राग-रङ्गको।

(एक दबाङ-भर दल, प्रमुख और चन्द्रमुखीके साथ, उत्तेजित अप्रियसत्यम्‌का प्रवेश।)

अप्रि०—रोको! मैं इस सभाको भंग करनेके लिये आया हूँ।

(सभामें कलकल)

सभापति०—(जनतासे) शांति, शांति!

अप्रि०—शांति, शांति नहीं, क्रांति, क्रांति! हम लोग इस सभाके संयोजकोंका मुंह भुरकुस करने आये हैं।

सभापति०—(दंतनिपोरसे) यह कौन है ?

दंत० -(उत्तेजित) यह, सज्जनो ! एक आवारा, गैरज़िम्मेवार, समाज-नाशक लेखक है। यह हमेशा पीये रहता है। इस वक्त भी नशेमें है। इस शुभकार्यमें उत्पात करने आया है। जैसे मारीच-सुबाहुका पुण्य-यज्ञ विध्वंस करनेके लिये विश्वामित्र-राक्षस आया था।

जनता- हा हा हा हा ! धन्य है, आपका रामायण ज्ञान दंतनिपोरजी !

सभापति०—(अप्रियंसत्यम्से) मैं आपको यह आदेश देता हूं। आप फौरन सभा-स्थल छोड़ दें।

चंद्र०—(आगे बढ़कर) उधर देखिये। सेठ शिवं-सुंदरम् मेरी मूर्त्ति देखते ही भाग रहा है। आप लोग पहले उस पापीको पकड़िये। फिर मेरी और इस 'सरला-सदन' की कहानी सुनिये।

(अप्रियंसत्यम्के दलके दो व्यक्ति सेठ शिवं सुन्दरम्को भागनेसे रोकते हैं।)

सभापति०—(चंद्रमुखीसे) तुम कौन हो, जो इस पुण्य-कार्यमें विघ्न डाल रही हो।

चंद्र०—(रोषसे) मैं अबला हूं। वही अबला जिनके उद्धारके लिये यह बाज़ार सजाया गया है। मैं पहले इस सेठकी दासी थी। चार दिन पूर्व तक। मैंने 'सरला सदन' में भी रातें बितायीं हैं। मैं कहती हूं—और दावेके साथ कहती हूं, यह 'सरला सदन' नहीं चकला है।

दंत०—(रोषसे) झूठ, झूठ !

शिवं०—(मुस्काकर) झूठ, झूठ !

चं०—(सेठके पास जाकर) मेरी ओर देख कर—बोल ! तूने मुझे नहीं चौपट किया है ?

शिवं०—(भयसे हाथ जोड़ कर) क्या करो देवि !

दंत०—भागो यहांसे। यह दुष्टा रावणकी बेटी सूर्पनखा है। गंदे लेखकोंकी माया है।

चंद्र०—(बढ़ कर एक तमाचा मारती है दंतनिपोरके कपोल पर) गधे कहींके ! उस दिन सेठके घरमें तूने मुझे सेठके साथ किस हालतमें देखा था ?

दंत०—अरे ! उस दिन तो सेठ मुझे शांति-पाठ पढ़ा रहे थे।

चंद्र०- चुप रह ! तू अंधा क्या समझ सकता है। वह क्रांति-पाठ नहीं इस पापीकी वासनाओंका शांति-पाठ था। इसीसे पूछो इसने शुभ (सुमुखकी ओर दिखाकर) इस बालकको (मदनकी कई युवतियोंकी ओर ..., इसको, इसको-- नहीं बिगाड़ा है ? तुम्हीं बोलो ! हे अभागिनी बहनों ! तुम्हीं बताओ ?

जनता- हां बहनों ! तुम्हीं बताओ !

(सब युवतियां आंखें नीची कर लेती हैं।)

जनता--तब यह ठीक है ? यह अबला-सुधारसमाज नहीं वेश्यालय है ?

एक युवती--हां ठीक है, ठीक है, ठीक है। केवल यह सेठ और यह टकोंधर्मम् ही नहीं, बल्कि, बाहर वाले भी हमें रुपये देकर बिगाड़ते हैं।

दन्त०--(रोषसे) नहीं सज्जनो ! यह सब माया है। सेठ शिवं सुन्दरम् मेरे मां-बाप हैं, मैं इल्म कसम खाकर गंगा और समुद्र शपथ खाकर, कह सकता हूं। यह दोनों सज्जन खरे सोना हैं। बटर गोल्ड !

जनता—यह टाल है। मारो इसे। यही चारों ओर

दांत निकाल-निकालकर 'सरला सदन' और 'सत्य-शोधक-समाज' के लिये चन्दा मांगता है।

(खूब धमाचौकड़ी मचती है। जनता मंच पर, सेठ पर, दन्तनिपोर और टकांधर्ममम् पर टूटती है। कोलाहल घोर मचता है। दन्तनिपोर दस-पाँच झापड़ खाकर तख्तके नीचे घुस जाता है। सब लोग बाहर भाग जाते हैं। सभा स्थल शून्य हो जाता है।)

दन्त०—(तख्तके भीतरसे जरा सर निकालकर) आह! भागता न, यहाँ छिपता न, तो, जान न बचती। यह क्रान्ति थी— क्रान्ति!

(दर्शकोंमेंसे दो व्यक्ति आते हैं।)

एक—सब भाग गये।

दो—बिलकुल सन्नाटा है।

एक—कैसा भण्डा फूटा। ये ससुरे देशोद्धारकी आड़में क्या-क्या लज्जतें लेते हैं।

दो—मैं तो कहता हूं, कोई देखता नहीं है, चौकी उठा ले, चला जाय।

एक—अरे नहीं। यह दिन दहाड़ेकी चोरी न पचेगी।

दो—आह ! जब इतनी औरतें, इतने चंदे, ऐसे-ऐसे नारकीय पाप, बड़े-बड़ोंसे पच जाते हैं ; तो यह चौकी भी हम न पचा सकेंगे। डरते हो—व्यर्थ। यह उन्हीं पाजी सेठोंकी होगी। उठा ले, चला जाय।

एक—सचमुच !

दो—हां जी।

एक—तो पहले तुम्हीं हाथ लगाओ।

दो—आओ !

(दोनों बढ़ते हैं, मगर उनके हाथ लगानेके पहले ही चौकी माथे पर उठाये श्रीदुन्नमिसोर जी भाग खड़े होते हैं। इस लीलासे उनमेंसे एक आदमी चकरा कर गिर पड़ता, दूसरा घोर आश्चर्यसे मुंह फैलाकर सांसें लेने लगता है।)

दो—आश्चर्य !

एक—अरे, चुप रह, शायद प्रेत रहा हो। काला था। मैंने देखा। भयानक।

(श्रीप्रशंसल्यमुका दो-तीन आदमियोंके साथ प्रवेश)

अग्नि०—(दोनोंको व्यग्र देखकर) ओहो ! तुम

डर गये। क्योंकि, वह चौकी लिये-दिये भाग खड़ा हुआ। वह तुमसे डरा, तुम उससे।

एक — वह कौन था भैया ?

अपि० — वह कोई विशेष व्यक्ति नहीं, प्रेत भी नहीं, सीधासादा, बुद्धू, बेचारा प्रचारक था। वह बुद्धि और रुपयेके मालिकोंके क्रूर हाथोंका गरीब शिकार था।

दो — हमने तो उसे शैतान समझा !

सब — हा हा हा हा !

य व नि का